सत्यमेव जयते

विज्ञान गरिमा सिंधु

अंक: 67

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development (Department of Higher Education)
Government of India

विज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक पत्रिका)

अंक 67

अक्तूबर-दिसम्बर 2008

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

2015HRD/09—1A

'विज्ञान गरिमा सिंधु' पत्रिका एक त्रैमासिक पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य है-हिंदी के माध्यम से विश्वविद्यालयी छात्रों के लिए विज्ञान संबंधी उपयोगी एवं आद्यतन पाठ्य पुस्तकीय तथा संपूरक साहित्य की प्रस्तुति। इसमें वैज्ञानिक लेख, शोध-लेख, तकनीकी निबंध, शब्द-संग्रह, शब्दावली चर्चा, विज्ञान कविताएं, विज्ञान कथाएं, विज्ञान समाचार, पुस्तक समीक्षा आदि का समावेश होता है। पत्रिका में अभिव्यक्त विचारों और मतों से मानव संसाधन विकास मंत्रालय, आयोग और संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

लेखकों के लिए निर्देश

1. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रामाणिक होनी चाहिए।
2. लेख का विषय मूलभूत विज्ञान, अनुप्रयुक्त विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबंधित सामयिक विषय होना चाहिए।
3. लेख सरल हो जिसे विद्यालय/महाविद्यालयों के छात्र आसानी से समझ सकें।
4. लेख लगभग 2000 शब्दों का हो। कृपया या तो टाइप किया हुआ या कागज के एक ओर स्पष्ट हस्तलिखित लेख भेजें जिसके दोनों तरफ हाशिया भी छोड़ें।
5. प्रकाशन हेतु भेजे गए लेख के साथ उसका सार भी हिंदी में अवश्य भेजें।
6. लेख में आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का ही प्रयोग करें।
7. लेख में प्रयुक्त तकनीकी/वैज्ञानिक हिंदी शब्द का मूल अंग्रेजी पर्याय भी आवश्यकतानुसार कोष्ठक में दें।
8. श्वेत-श्याम या रंगीन फोटोग्राफ स्वीकार्य हैं। रेखाचित्र सफेद कागज पर काली स्याही से बने होने चाहिए।
9. लेख के प्रकाशन के संबंध में संपादक का निर्णय ही अंतिम होगा।
10. लेखों की स्वीकृति के संबंध में पत्र व्यवहार का कोई प्रावधान नहीं है।
11. अस्वीकृत लेख वापस नहीं भेजे जाएंगे। अतः लेखक कृपया टिकट-लगा लिफाफा साथ न भेजें।
12. प्रकाशित लेखों के लिए मानदेय की दर 250 रुपए प्रति हजार शब्द है, जिसकी न्यूनतम राशि 150 रुपए और अधिकतम राशि 1000 रुपए है।
13. भुगतान लेख के प्रकाशन के बाद ही किया जाएगा।
14. कृपया लेख की दो प्रतियां निम्न पते पर भेजें:
    श्री अशोक एन सेलवटकर
    संपादक, विज्ञान गरिमा सिंधु
    वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
    पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
    नई दिल्ली-110066
15. समीक्षा हेतु कृपया पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां भेजें।

सदस्यता शुल्क:

	भारतीय मुद्रा		विदेशी मुद्रा
सामान्य ग्राहकों/संस्थाओं के लिए प्रति अंक	रु. 14.00	पौंड 1.64	डॉलर 4.84
वार्षिक चंदा	रु. 50.00	पौंड 5.83	डॉलर 18.00
विद्यार्थियों के लिए प्रति अंक	रु. 8.00	पौंड 0.93	डॉलर 10.80
वार्षिक चंदा	रु. 30.00	पौंड 3.50	डॉलर 2.88

कॉपीराइट

प्रकाशक:
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
भारत सरकार, पश्चिमी खंड-7,
रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली - 110 066

बिक्री हेतु पत्र-व्यवहार का पता:
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
भारत सरकार, पश्चिमी खंड-7,
रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली - 110 066
दूरभाष - (011) 26105211
फैक्स - (011) 26102882

बिक्री स्थान:
प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग
भारत सरकार,
सिविल लाइन्स, दिल्ली - 110 054

विज्ञान गरिमा सिंधु

प्रधान संपादक

प्रो. के. बिजय कुमार

अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

संपादक

श्री अशोक सेलवटकर

सहयोग

श्री देवेंद्र दत्त नौटियाल

प्रकाशन

डॉ. पी.एन. शुक्ल

सहायक निदेशक

कलाकार

श्री आलोक वाही

संपादक मंडल

1. प्रो. कीर्ति सिंह,
पूर्व कुलपति, श्रीमती इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय,
हिमाचल प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय,
एवं नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
पूर्व अध्यक्ष, कृषि वैज्ञानिक नियुक्ति मंडल
सी - 9/9654, वसंत कुंज, नई दिल्ली - 110070

2. प्रो. आर. सी. मेहरोत्रा,
पूर्व कुलपति, राजस्थान, दिल्ली एवं इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, 4/682, जवाहर नगर, जयपुर -
302004

3. डॉ. ओम विकास,
वरिष्ठ निदेशक एवं अध्यक्ष,
सूचना, प्रौद्योगिकी विभाग, संचार और सूचना
प्रौद्योगिकी मंत्रालय, इलेक्ट्रॉनिक निकेतन, लोदी रोड
6, सी. जी. ओ. कॉम्प्लेक्स, नई दिल्ली - 110003

4. डॉ. कृष्ण बिहारी पांडेय,
अध्यक्ष, लोक सेवा आयोग (उ.प्र.),
10 कस्तूरबा गांधी मार्ग, इलाहाबाद

5. श्री एम.एल.गुप्ता,
संयुक्त सचिव, राजभाषा विभाग,
गृह मंत्रालय, लोकनायक भवन,
खान मार्केट, नई दिल्ली - 110003

6. डॉ. शिव गोपाल मिश्र,
प्रधान मंत्री, विज्ञान परिषद, प्रयाग,
महर्षि दयानंद मार्ग, इलाहाबाद - 221002

7. डॉ. चंद्र त्रिखा,
निदेशक, हरियाणा साहित्य अकादमी,
कोठी नं. 897, सेक्टर-2, पंचकुला - 134112

8.डॉ. (श्रीमती) कृष्णा मिश्रा,
कोआर्डिनेटर, जैव प्रौद्योगिकी केंद्र,
नेहरू विज्ञान केंद्र,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

9. डॉ निशीथ चतुर्वेदी,
परामर्शदाता एवं अध्यक्ष, विकृति विज्ञान विभाग
डॉ. राम मनोहर लोहिया अस्पताल, नई दिल्ली -

10. श्री शंभुनाथ, आई. ए. एस.
प्रमुख सचिव, महामहिम राज्यपाल,
सचिवालय, लखनऊ

11. प्रो. मुरलीधर तिवारी
निदेशक, भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान, इलाहाबाद

12. डॉ. रमेश दत्त शर्मा,
अध्यक्ष, भारतीय विज्ञान लेखक संघ
457, हवासिंह ब्लॉक, खेलगांव, नई दिल्ली

13. अपर सचिव
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(उच्चतर शिक्षा विभाग)
शास्त्री भवन, नई दिल्ली - 110001

14. संयुक्त शिक्षा सलाहकार (भाषा)
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(उच्चतर शिक्षा विभाग)
शास्त्री भवन, नई दिल्ली - 110001

15. प्रो. के . बिजय कुमार, अध्यक्ष
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(उच्चतर शिक्षा विभाग)
पश्चिमी खंड - 7, रामकृष्णपुरम्
नई दिल्ली - 110066

संपादकीय

आयोग दवारा हिंदी में प्रकाशित वैज्ञानिक पत्रिका **विज्ञान गरिमा सिंधु** का यह 67 वां अंक पाठकों / लेखकों को समर्पित है। इसके प्रकाशन के बारे में हम पुनः रेखांकित करना चाहेंगे कि चूंकि अधिकांश शोध-साहित्य और मानक पत्रिकाएं अंग्रेजी में ही उपलब्ध थी अतः हिंदी माध्यम से पढ़ने वाले छात्रों को काफी असुविधा हुआ करती थी। अतः यह आवश्यक समझा गया कि उनके लिए भी उच्चस्तरीय पत्रिकाएं एवं शोध-साहित्य हिंदी में उपलब्ध हो ताकि वे भी उनसे लाभान्वित हो सकें।

विज्ञान और प्रौदयोगिकी के क्षेत्र में पारिभाषिक शब्दों का बहुत महत्व है। इनके बिना वस्तुओं और संकल्पनाओं की अभिव्यक्ति संभव नही है। अतः **विज्ञान गरिमा सिंधु** का प्रकाशन विज्ञान के क्षेत्र में इस लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में आयोग द्वारा विशेषतया उठाया गया एक महत्वपूर्ण कदम है। पत्रिका के माध्यम से यह भी प्रयास किया जाता रहा है कि आयोग दवारा निर्मित-शब्दावली से पाठकों को परिचित कराया जाए। पत्रिका में सम्मिलित सभी लेखों के तकनीकी शब्दों के सभी हिंदी समानक/पर्याय वही रहते हैं जो आयोग के विशेषज्ञों दवारा निर्धारित किए जाते हैं।

पत्रिका को स्तरीय रूप प्रदान करने के लिए हिंदी में लिखे गए निबंध, शब्द-संग्रहों के नमूने, परिभाषा निदर्श, आलेख, शोधपत्र शमिल किए जाते हैं। इस प्रकार यह वैज्ञानिक लेखों, तकनीकी निबंधों, शब्द भंडार, परिभाषा निदर्श, शब्दावली चर्चा, विज्ञान कविताओं, विज्ञान कथाओं, विज्ञान समाचार आदि के समावेश से डाइजेस्ट और पाठमालाओं का मिश्रित प्रयास है। इसमें विश्व-विदयालय स्तरीय ग्रंथ निर्माण योजना के अंतर्गत हिंदी में प्रकाशित कृषि विज्ञान, आर्युविज्ञान तथा इंजीनियरी समेत अन्य वैज्ञानिक विषयों की पुस्तकों की समीक्षाएं भी प्रकाशित की जाती हैं। पत्रिका के अंत में आयोग की गतिविधियों, उपलब्धियों तथा प्रकाशनों के बारे में भी जानकारी दी जाती है।

पत्रिका के प्रकाशन का शुभारंभ वर्ष 1986 से हुआ और अब तक इसके 66 अंक प्रकाशित हो चुके हैं जिसमें कृषि विज्ञान (2), भूविज्ञान (1), शब्दावली (1), कंप्यूटर विज्ञान (1), जैव प्रौदयोगिकी (1) आदि कुल 6 विशेषांक भी शामिल हैं। इसे उत्कृष्ट पत्रिका का सम्मान भी प्राप्त है।

प्रस्तुत अंक में कृषिविज्ञान, आयुर्विज्ञान और मूलभूत विज्ञानों के 12 स्तरीय लेख शामिल किए गए हैं। इनके द्वारा विभिन्न विषयों के वैज्ञानिक पहलुओं को उजागर किया गया हैं।

इस अंक को तैयार करने में जिन लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों तथा वैज्ञानिक लेखकों ने अपने लेख संबंधी अनुभवों को लिपिबद्ध करके योगदान किया है उनके प्रति हम हृदय से आभारी हैं।

मुझे पूरा विश्वास है, यह अंक सुधी पाठकों एवं शैक्षिक तथा वैज्ञानिक संस्थानों तक पहुंचकर हमारी आशाओं के अनुक्रम सभी को संतुष्टि प्रदान करेगा।

नई दिल्ली
दिनांक 14 जुलाई-2008

(प्रो. के. बिजय कुमार)
प्रधान संपादक
अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

अंक - 67 अक्तूबर-दिसम्बर 2008

इस अंक में

- ❑ जैविक हाथियारों की घातकता 1
- ❑ सूर्य से किरीटीय द्रव्य निष्कासन एवं सौर लपटें 3
- ❑ इन्द्रिय रहित विविध रस-भोगीः जीवाणु 7
- ❑ ग्रामीण ऊर्जा और रोजगार का सशक्त माध्यम 'गोबर गैस' 13
- ❑ महासागर खोज अभियान 18
- ❑ औषधीय गुणों से भरपूर - पिप्पली 23
- ❑ अवसाद (डिप्रैशन) का बढ़ता कहर 25
- ❑ विषाणुः प्रकृति के शत्रु भी और मित्र भी 29
- ❑ बेर की खेती - एक लाभप्रद व्यवसाय 32
- ❑ एक उपचार पद्धति है बागवानी भी 36
- ❑ धान मिल से होने वाले वायु प्रदूषण का मजदूरों के स्वास्थ्य पर प्रभाव 38
- ❑ कृषि में जल का महत्व 42
- ❑ विज्ञान समाचार (डा. दीपक कोहली)

पत्र व्यवहार :-

संपादक

विज्ञान गरिमा सिंधु

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

मानव संसाधन विकास मंत्रालय

पश्चिमी खंड - 7 रामकृष्णपुरम नई दिल्ली - 110066

इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों, अभिव्यक्त विचारों आदि से वैज्ञानिक तथा तकनीक शब्दावली आयोग अथवा मानव संसाधन विकास मंत्रालय या संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं हैं। यह पत्रिका हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकि शब्दावली आयोग के प्रचार प्रसार के सच हिंदी में वैज्ञानिक लेखन को बढ़ावा देने के लिए हैं।

1

जैविक हथियारों की घातकता

-डा.दीपक कोहली *

जैविक हथियार प्राकृतिक तौर पर विद्यमान तथा प्रयोगशाला में विकसित और उत्पादित किए जा सकने वाले वे सूक्ष्म अवयव हैं, जो मानव शरीर या पशु-पक्षियों के शरीर में प्रवेश करके रोग पैदा कर सकते हैं तथा वनस्पतियों या फसलों को नष्ट कर सकते हैं। ये जैविक हथियार विषाणु, जीवाणु, कवक या प्रोटोजोआ युक्त हो सकते हैं। इन जैविक तत्वों का उत्पादन, पुनरुत्पादन और संवर्धन करना काफी आसान होता है तथा इन्हें एक बड़े भौगोलिक क्षेत्र में हवा-जल संक्रमण व पशु-मानव संक्रमण द्वारा तेजी से फैलाया जा सकता है। परंपरागत सैन्य हथियारों की तुलना में जैविक और रासायनिक हथियारों की घातकता इसलिए अधिक होती है कि जिन लोगों पर इन हथियारों से हमला किया जाता है वे इनसे सर्वथा अनभिज्ञ होते हैं तथा उनके पास इनसे बचाव का कोई उपाय भी नही होता।

नाभिकीय बमों की तुलना में जैविक हथियारों के निर्माण में प्रयुक्त संसाधन और औजार काफी सस्ते होते हैं और आसानी से प्राप्त किए जा सकते हैं। इसके कारण ही इन हथियारों को गरीबों का नाभिकीय बम भी कहते हैं। इस प्रकार ये हथियार से अधिक खतरनाक, सस्ते, आसानी से निर्मित, वितरित करने योग्य तथा व्यापक संभावनाओं वाले होते हैं। जैविक हथियारों के इस्तेमाल का मुद्दा सबसे पहले खाड़ी युद्ध के दौरान आया, जब अमेरिकी अधिकारियों ने संदेह व्यक्त किया कि ईराक के पास ऐसे हथियारों का विशाल भंडार है। इसके पश्चात् अन्य कई राष्ट्रों जैसे- अमेरिका, लीबिया, सीरिया, उत्तर कोरिया, ईरान, चीन, रूस इत्यादि ने जैविक हथियारों पर कार्य करने के लिए प्रयोगशालाएं स्थापित की। हालांकि इन सभी देशों ने यह दावा किया कि उनकी रुचि सिर्फ जैविक हथियारों के खतरे से लड़ने के लिए सुरक्षात्मक अनुसंधान करने में है। अनेक जैविक रोगाणु ऐसे हैं जो एक बार वायुमंडल में छोड़ देने पर अनंत काल तक फलते-फूलते रहते हैं। प्लेग, टुलारेमिया, क्यू बुखार, पूर्वी इन्सेफलाइटिस, ऐंथ्रैक्स तथा छोटी चेचक कुछ परंपरागत जैविक हथियार हैं। रासायनिक अभिकारकों से अलग जो निर्जीव जीवाणु और विषाणु होते हैं, संक्रामक एवं प्रजनक हो सकते हैं। यदि वे वातावरण में स्थापित हो जाते हैं तो उनकी संख्या अन्य हथियारों के विपरीत अपने आप ही क्रमशः बढ़ने लगती है और तब वे लंबे समय तक काफी खतरनाक बने रह सकते हैं। कुछ जैविक अभिकारक लोगों को विकलांग बना देते हैं, जबकि कुछ मौत का संदेश लेकर आते हैं। जैविक हथियारों का विस्तार घातक साल्मोनेला (जो अस्थायी रूप से अपंग बना देता है), से सुपर बुबोनिक प्लेग तक होता है जिससे बड़े पैमाने पर लोग मारे जाते हैं। जैविक अभिकारकों का प्रयोग लोगों को मारने या उन्हें विकलांग बना देने में किया जा सकता है। साथ ही, इनसे देश की अर्थव्यवस्था को क्षति पहुंचाने के उद्देश्य से पेड़-पौधों और जानवरों पर हमला किया जा सकता है।

*5/104 विपुल खंड, गोमती नगर, लखनऊ, 226010

उदाहरणस्वरूप, **इबोला** विषाणु लगभग एक सप्ताह में ही इसके शिकार हुए 10 प्रतिशत से भी अधिक लोगों को मौत की नींद सुला देता है। **इबोला** का कोई इलाज या उपचार नहीं है। जैविक हथियारों के अंतर्गत जीव-विष को भी शामिल किया जा सकता है जो मूल रूप से जीवों द्वारा उत्पादित घातक पदार्थ है। जीन अभियांत्रिकी के विकास ने डिजाइनर हथियारों का निर्माण संभव बना दिया है। इसके द्वारा सूक्ष्म जीवाणुओं में विशेष जीन डालकर उन्हें ऐन्टी-बायोटिक या प्रतिरोधी, विषकारी तथा पर्यावरणीय रूप से स्थिर बनाया जा सकता है। ऐंथ्रेक्स, बॉटुलिज्म, इबोला व गिल्टी प्लेग के वाहक काफी प्राणघातक होते हैं।

जैविक हथियारों के बारे में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इन्हें बड़ी आसानी से प्राप्त और विकसित किया जा सकता है। ऐंथ्रेक्स और बॉटुलिज्म सामान्य मिट्टी के जीवाणु से प्राप्त किए जा सकते हैं। माइक्रोबायोलॉजी की आधारभूत जानकारी रखने वाला कोई भी व्यक्ति कुछ हजार डॉलर खर्च करके जैव हथियार प्रयोगशाला स्थापित कर सकता है।

हालांकि भारत में किसी प्रकार का जैविक हथियार से हमला नहीं हुआ है, फिर भी इसकी आशंका से बचा नहीं जा सकता। विशेषज्ञों के अनुसार कम कीमत तथा आसानी से फैलने के गुण के कारण जैविक हथियारों का प्रयोग आतंकवादियों द्वारा करने की संभावना बढ़ी है। उल्लेखनीय है कि 1 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को जैविक हथियारों का निशाना बनाने में सिर्फ 1 डॉलर खर्च आता है, जबकि इतने ही क्षेत्र में परंपरागत हथियारों से नुकसान के लिए 2 हजार डॉलर खर्च करना पड़ेगा। जैविक हमले की गंभीरता और विनाशकारी प्रभाव को देखते हुए भारत में भी राष्ट्रीय निगरानी तंत्र स्थापित करने की योजना बनाई गई है। इसमें संभावित जैविक आतंकवादी हमले से बचाव के लिए सीमावर्ती राज्यों की निगरानी करने की भी योजना है। राष्ट्रीय संक्रामक रोग संस्थान (NICD) इस राष्ट्रीय निगरानी तंत्र का शीर्ष अभिकरण होगा। ग्वालियर में विष विज्ञान व जैव रासायनिक औषधि विज्ञान तथा जीवाणु व विषाणु वाहकों के विरुद्ध एंटीबाडी बनाने के क्षेत्र में अध्ययन के लिए सभी प्राथमिक सुविधाएं विद्यमान हैं। ऐंथ्रेक्स, ब्रूसेलोसिस, हैजा, प्लेग तथा छोटी चेचक के जैविक खतरे से बचाव के लिए अनुसंधान जारी है।

सैनिक टुकड़ियों के लिए सुरक्षात्मक वर्दियां निर्मित की गई हैं। विशेषज्ञों के अनुसार हमारे शहरों में जैविक आक्रमण से निपटने के लिए पर्याप्त मात्रा में अस्पताल, डॉक्टर, चिकित्सा कर्मचारी, पुलिस बल, नागरिक सुरक्षा कोर मौजूद हैं। इसके अतिरिक्त, अधिकतर प्रतिकारक दवाएं स्थानीय स्तर पर निर्मित की जा सकती हैं।

जब कहीं जैविक हथियारों से हमला होता है, तब यह अति आवश्यक है कि लोगों पर हमला किए गए उन अभिकारकों के स्रोत के बारे में सूचना मिले, बचाव के उपायों की रूपरेखा तैयार की जाए तथा सूक्ष्म-जीवों के फैलाव द्वारा उत्पन्न चुनौतियों से निपटने के लिए उच्चस्तरीय तैयारी व तत्परता दिखाई जाए। इस प्रकार के हमलों से बचने के लिए आकस्मिक योजना बनाने तथा एक विस्तृत जन-स्वास्थ्य नीति प्रतिपादित करने की आवश्यकता है। इसके अंतर्गत औषधियों एवं टीकों के अतिक्रांत स्टाक की पुनःपूर्ति करना, एंटीडॉट्स, पुराने पड़ गए अतिक्रांत उपकरणों को बदलना आदि शामिल हो सकते हैं।

किसी भी जैविक हमले को रोकने या उसका प्रतिकार करने में सतर्कता और जन-विश्वास का अति महत्वपूर्ण स्थान है। ऐसा सभी सूचना माध्यमों को इस्तेमाल करके एक प्रभावी सूचना अभियान, सार्वजनिक व्याख्यान और प्रदर्शन द्वारा जैविक युद्ध में प्रयुक्त अभिकारकों के बारे में मूल सूचना देकर और बचाव के उपाय बताकर तथा हमले के विरुद्ध निवारण युक्ति करके संभव बनाया जा सकता है।

2

सूर्य से किरीटीय द्रव निष्कासन (किद्रनि) एवं सौर लपटें

-डॉ. देवेंद्र दत्त शर्मा *

आदि काल से ही संपूर्ण ब्रह्मांड मानव-जाति की प्रेरणा का स्त्रोत रहा है। जितना पृथ्वी पर विज्ञान समृद्ध होता है उतना ही हम अंतरिक्ष में कदम आगे बढ़ा पाते हैं। हमारी पृथ्वी की समस्त चर-अचर प्राणियों की संपूर्ण रासायनिक एवं भौतिक गतिविधियां सूर्य की ऊर्जा द्वारा ही संचालित होती हैं। सूर्य ऊर्जा का एक महान स्त्रोत है। प्रस्तुत लेख में सूर्य के बारे में कुछ जानकारी देने का प्रयास किया गया है।

हमारा सूर्य एक मध्य क्रम या आकार का तारा है अर्थात् इसका द्रव्यमान, आकार, सतही तापमान और रासायनिक संरचना छोटे और बड़े तारों के बीच की है। दूरस्थ तारों की अपेक्षा मध्य क्रम के तारों का अध्ययन करने हेतु सूर्य एक स्थानीय प्रयोगशाला के रूप में हमेशा उपलब्ध है। सूर्य के बारे में उपलब्ध कुछ आंकड़े निम्नालिखित हैं:

पृथ्वी और सूर्य के मध्य की औसत दूरी : 149,598.000 किमी.
पृथ्वी और सूर्य के बीच की अधिकतम दूरी : 152,000,000 किमी.
पृथ्वी और सूर्य के मध्य की न्यूनतम दूरी : 147,000,000 किमी.
सूर्य का औसत कोणीय व्यास : 32 आर्क मिनट
सूर्य त्रिज्या : 696,000 किमी. (=109 गुना पृथ्वी त्रिज्या)
सूर्य द्रव्यमान : 1.99×10^{30} किग्रा. (= 3.3×10^5 पृथ्वी द्रव्यमान)
औसत घनत्व : (1.41 ग्रा./सेमी.^{3}) (पृथ्वी जल घनत्व से कुछ ही ज्यादा)
प्रदीप्ति : 3.90×10^{33} अर्ग/सेकंड (=3.9×10^{26} वाट)
सतही ताप : 5800^0 K (केल्विन)
केंद्रीय ताप : 15.5×10^6 K (केल्विन)
रासायनिक घटक (भारानुसार) : 75 हाइड्रोजन, 24% हीलियम, एक प्रतिशत अन्य तत्व
हमारी आकाश गंगा की परिक्रमा करने में सूर्य को लगने वाला समय : 225,000,000
सूर्य द्वारा आकाश गंगा के केंद्र का चक्कर लगाने वाला वेग - 250 किमी./सेकंड
सूर्य का प्रकाश पृथ्वी पर आने में लगने वाला समय : 8.3 मिनट
सूर्य की आयु : 4.5 - 5.0 अरब वर्ष

आकाश गंगा के केंद्र से सूर्य की दूरी 10 किलो पारसेक (3000 प्रकाश वर्ष) (प्रकाश द्वारा 3 लाख किमी./सेकंड के गति से एक वर्ष में तय की गई दूरी को एक प्रकाश वर्ष कहते हैं। यह लगभग 9 खरब किलोमीटर होती है।)

सूर्य में ऊर्जा का उत्पादन नाभिकीय क्रियाओं द्वारा होता है। ये क्रियाएं सूर्य के केंद्र अर्थात् कोर में होती हैं। वहां से इनका विकिरण बाहर की ओर होता है। सूर्य की सतह की हमेशा चर्चा की जाती है। उल्लेखनीय है कि सूर्य की सतह पृथ्वी या अन्य ग्रहों-जैसी ठोस नही है। यह आग का एक विशाल गोला है। हमें सूर्य का अवलोकन करने पर एक-सतह सी प्रतीत होती है। यह वास्तव में गर्म गैसों की एक विशिष्ट परत है जिसकी मोटाई लगभग एक सौ किलोमीटर है। अधिकतर दृश्य प्रकाश यहीं से आता है। गुलाबी रंग की 2000 किमी. मोटी एक अन्य परत प्रकाश मंडल के ऊपर होती है जिसे वर्ण मंडल (क्रोमोस्फियर) कहा जाता है। इसे केवल पूर्ण सूर्य-ग्रहण के समय ही देखा जा सकता है। इस सब के ऊपर किरीट (कोरोना) होता है, जिसका विस्तार कई लाख किलोमीटर तक होता है। किरीट द्वारा उत्सर्जित प्रकाश की मात्रा उतनी ही होती है जितनी पूर्णमासी की रात में धरती पर चांदनी होती है। इसे भी पूर्ण सूर्य-ग्रहण के

* निकट दुर्गा मंदिर, वीरभद्र, ऋषिकेश, उत्तरांचल

अवसर पर देखा जा सकता है। वर्णमंडल प्रकाशमंडल से 1000 गुना ज्यादा विरल होता है जबकि इसका तापमान आश्चर्यजनक रूप से 4000 केल्विन से बढ़कर 90 लाख केल्विन तक हो जाता है। पूर्ण सूर्य-ग्रहण के समय सूर्य को कभी भी नंगी आखों से नहीं देखना चाहिए क्योंकि किरीट का तापमान 50 लाख केल्विन तक होता है। इससे कई हानिकारक किरणें निकलती हैं। इस विकिरण से ओजोन परत हमारी रक्षा करती है। किरीट को देखने के लिए बनाए गए विशेष यंत्र को किरीटलेखी (कोरेनोग्राफ) कहते हैं। सूर्य के किरीट में सौर प्रज्वाल या सौर लपटों का उठना एक सामान्य घटना है। औसतन एक बड़ी भभक प्रतिदिन उठती है। इसके उद्भव के बारे में अभी कोई ठोस जानकारी नहीं है। प्राचीन चीनी खगोलविदों द्वारा सौर धब्बों के बारे में 2000 वर्ष पूर्व प्रेक्षण किए गए। इसके बाद गैलिलियो ने विस्तार से इनका अध्ययन किया। सन् 1859 ई. में ब्रिटिश विज्ञानी प्रो. रिचर्ड कारीगंटन द्वारा विस्तृत प्रेक्षण के बाद यह सिद्ध किया गया कि सूर्य एक ठोस पिंड की तरह अपने अक्ष पर नहीं धूमता। उन्होंने पाया कि ध्रुवीय क्षेत्र की अपेक्षा भूमध्य का क्षेत्र अधिक तीव्रता से घूमता है। भूमध्य क्षेत्र के पास का सौर धब्बा 25 दिन में एक चक्कर पूरा करता है, जबकि भूमध्य रेखा से 30^0 उत्तर या दक्षिण में सौर धब्बे 27½ दिन में एक चक्कर लगाते हैं। 75^0 उत्तर या दक्षिण में स्थित सौर धब्बे 33 दिन में एक परिक्रमा पूरी करते हैं, जबकि ध्रुवों पर स्थित धब्बे 35 दिन का लंबा समय लेते हैं। इस घटना को परिवर्तनीय ध्रुवण कहा जाता है।

किरीटीय द्रव्य निष्कासन (किद्रनि)

सूर्य द्वारा स्वतः द्रव्य निष्कासन एक सामान्य प्रकिया होते हुए भी वैज्ञानिक के लिए चर्चा का एक महत्वपूर्ण विषय है। हमारा यह लेख किद्रनि पर ही केंद्रित है। यहां हम इसके उद्भव एवं प्रभाव की संक्षेप में चर्चा करेंगे। वैज्ञानिकों द्वारा इसके कई प्रतिरूप प्रस्तुत किए गए, पर अभी भी इनकी उत्पत्ति के बारे में काफी कम जानकारी है।

सूर्य द्वारा कुछ सौ किलोमीटर से 200 किमी./से. के उच्च वेग से लगभग 10^6 डिग्री केल्विन तापमान पर (10^{14} 10^{15}) ग्राम के छींटे स्वतः ही निष्कासित होते रहते हैं। अत्यधिक ऊर्जा स्तर (लगभग 10^{29}-10^{30} अर्ग) वाले कोद्रनि आर्लिक सौर लपटों एवं सौर भमकों के बाद सूर्य-पृथ्वी के वातावरण को प्रभावित करने वाले सबसे प्रभावी कारक हैं। संप्रति दोनों ही क्षेत्र खगोल भौतिकी में अनुसंधान के महत्वपूर्ण विषय हैं। सौर कोरोना में ऊर्जा लपटें व किद्रनि-जैसी क्षणिक घटनाएं वैज्ञानिकों में चर्चा का आम विषय है। जहां एक ओर सौर लपटें आकस्मिक प्रचंड एवं विद्युत् चुंबकीय वर्णक्रम में दृश्य होती हैं, वही किद्रनि किरीट प्रदव्य के छींटें मात्र हैं। संप्रति सौर लपट एवं किद्रनि के आपसी संबंधों पर गहन शोध कार्य चल रहा है। ज्यादातर शोध कार्य इसके कारण एवं प्रभाव पर ही केंद्रित हैं। अब यह स्पष्ट हो चुका है कि ये दोनों कोरोना में होने वाली अलग-अलग घटनाएं हैं। हालांकि दोनों के आविर्भाव की प्रक्रिया में काफी समानता है। अब प्रयोगों द्वारा यह सुज्ञात है कि सूर्य की सतह पर परिवर्तनीय घूर्णन होता है। भूमध्य रेखा पर घूर्णन ध्रुवों से अधिक होता है। कोरोना का चुंबकीय क्षेत्र परिवर्तीनीय घूर्णन के कारण लगातार ऐंठता रहता है। इस क्षेत्र की जड़ें प्रकाशमंडल में गहराई तक समाई रहती हैं। इस प्रकार चुंबकीय क्षेत्र में दबाव उत्पन होता रहता है और यह अपनी न्यूनतम स्थितिज ऊर्जा की स्थिति से दूर होता जाता है। अब ऊर्जा साम्य के असंतुलन की इस विध्वंसक स्थिति से इन दबावों को गुजरना पड़ता है और चुंबकीय क्षेत्र की न्यूनतम स्थितिज ऊर्जा वाली स्थिति का पुनर्गठन होता है। ऐसा चुंबकीय पुनर्गठन चुंबकीय अभिवाह के निस्तारण से संभव होता है। दबावयुक्त चुंबकीय क्षेत्र में संगृहीत इस मुक्त ऊर्जा का कुछ भाग कोरोना प्लाज्मा को गर्म करने व कुछ सौर गैस कणों की ऊर्जा बढ़ाने में खर्च हो जाता है और अंततः यह ऊर्जा विकिरण ऊर्जा में बदल जाती है। इस ऊर्जा का शेष भाग सूर्य के गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध किद्रनि को ऊपर उठाने व त्वरित करने में खर्च हो जाता है। इस प्रकार कोद्रनि व सौर-लपट दोनों की ही एकीकृत व्याख्या हो जाती है। यहां यह रेखांकित करना गलत न होगा कि बड़ी सौर भभक व तीव्र कोद्रनि ही आपस में संबंधित होती है। जबकि

कई बार ऐसी स्थिति भी सामने आई है जब किद्रनि बिना सौर-लपटों के उत्पन्न हुआ है और सौर-लपट बिना कोद्रनि के।

सामान्यतया किद्रनि के उत्पत्ति स्थल पर भौतिक व रासायनिक क्रियाएं बहुत ही जटिल होती हैं। कद्रनि की शुरुआती प्रक्रिया संप्रति शोध का एक अग्रणी क्षेत्र है। 29 फरवरी 2002 को प्रेक्षण हेतु किद्रनि वैज्ञानिकों द्वारा किरीटलेखी द्वारा देखा गया। यह किद्रनि घनत्व वृद्धि के साथ आगे बढ़ रहा था। किद्रनि अध्ययन में सोलर एवं हीलियोस्फीयर आब्जरवेटरी पर स्थापित वृहत्कोणी स्पेक्ट्रमी किरीटलेखी से प्राप्त आंकड़े व उच्च स्तरीय फोटोग्राफ आगे के अनुसंधान में उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। इससे पूर्व स्काई वेब व सोलर मैक्सीयम मिशन भी किद्रनि के अध्ययन में सहायक रहे। अब थोड़ा किरीटलेखी की कार्य-विधि भी समझ लें। हम नंगी आखों द्वारा कोद्रनि को नही देख सकते। इसके लिए सर्व प्रथम कृत्रिम सूर्य-ग्रहण की स्थिति पैदा की जाती है। इस प्रकार प्रकाशमंडल का प्रकाश रुक जाता है और सिर्फ किरीट का ही प्रकाश उपलब्ध होता है। तब सूर्य पर उठती हुई किद्रनि को देखते व प्रेक्षण करते हैं। मुख्यत: सी-2 व सी-3 श्रेणी के किरीटलेखी उपलब्ध हैं। इनके दृश्य क्षेत्र क्रमश: (2.2–6.0) सूर्य त्रिज्या तथा (3.7--30) सूर्य त्रिज्या के हैं।

अब किद्रनि की आकृति कैसी हो, इसकी भी संक्षेप में चर्चा कर ली जाए। इसकी आकृति पल-पल बदलने वाली और बड़ी ही जटिल होती है। एक प्रतिष्ठित किद्रनि का अग्रभाग अत्यंत चमकीला व इसके पीछे का भाग एक घनी काली गुफा-जैसा होता है। एक चमकीली कोर इस गुफा में समाई होती है। समान्यतया किद्रनि अलग-अलग आकार एवं प्रकार की होती हैं। इसका आकार बहुत-कुछ सूर्य पर इसके उठने के स्थान व देखने वाले की स्थिति पर निर्भर करता है। हालांकि अभी वैज्ञानिक यह अनुमान नहीं लगा पाऐ हैं कि एक औसत किद्रनि का शुरुआती ऊर्जा बजट कितना होता है, पर आंकड़े एकत्रित इसकी ऊर्जा व ऊँचाई (सूर्य त्रिज्या में) में कुछ संबंध स्थापित किए गए हैं। अंत में यह जानना आवश्यक है कि किद्रनि का सूर्य-पृथ्वी वातावरण व मानव जाति पर क्या प्रभाव पड़ता है।

पृथ्वी की ओर रुख करने वाला (2 से 30) सूर्य त्रिज्या वाला किद्रनि कणों की अथाह राशि लेकर चलता हैं जिससे जीव-जंतु, वनस्पतियां व विद्युत् एवं संचार उपकरण विशेष रूप से प्रभावित होते हैं। इस ऊर्जा का प्रभाव हमारी उपग्रह प्रणाली, अंतरिक्ष यात्रियों की सुरक्षा, यहां तक कि हवाई जहाज में यात्रा कर रहे यात्रियों पर भी पड़ता है। जहां तक स्वयं सूर्य पर इनके प्रभाव का प्रश्न है तो इनका सूर्य के ऊर्जा बजट पर नगण्य प्रभाव ही प्रतीत होता है।

प्रस्तुत लेख को सूर्य के कुछ रेखा चित्रों द्वारा समझाने का प्रयास किया गया है।

चित्र 1:

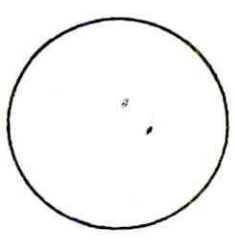

सूर्य की सतह

सूर्य एक मात्र ऐसा तारा है जिसकी सतह के बारे में पृथ्वी पर स्थित दूरबीनों से जानकारी ली जा सकती है। वैज्ञानिक इसका फोटो लेते समय विशेष सावधानी बरतते हैं। क्योंकि इसके विकिरण हानिकारक होते हैं।

चित्र 2 :

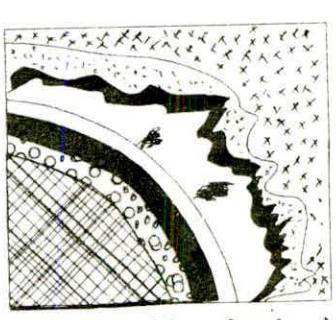

इस में सूर्य के कोरोना को दर्शाया है।

सूर्य के कोरोना को दर्शाया गया है। यहां काली छाया वाला क्षेत्र सघनतम है जबकि क्रॉस द्वारा दिखाया गया क्षेत्र विरलतम है। काले सघन क्षेत्र से निकली भाले-जैसी नुकीली ज्वालाएं 20 लाख किलोमीटर तक फैल जाती हैं। सौर भभकों व किद्रनि के बाद मिनटों में कोरोना का संपूर्ण परिदृश्य ही बदल जाता है।

चित्र 3 :

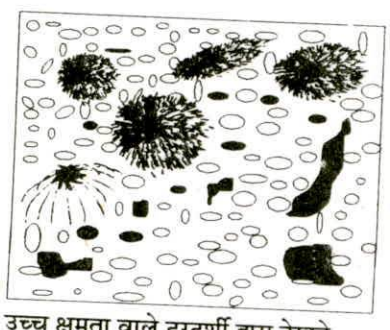

उच्च क्षमता वाले दूरदर्शी द्वारा देखने पर सूर्य पर काले धब्बे व दानेदार संरचना।

उच्च क्षमता वाले दूरदर्शी द्वारा देखने पर सूर्य पर काले धब्बे व दानेदार संरचना कुछ ऐसी दिखाई देती है। प्रत्येक ाने का क्षेत्र का एक हजार किलोमीटर तक फैला होता है।

चित्र 4 :

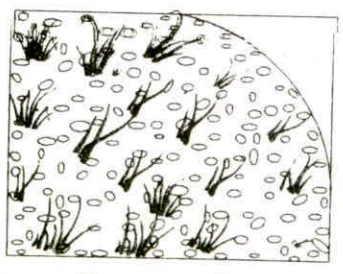

यह कांटेदार रचनाएँ गर्म गैसों के जेट हैं।

ये कांटे दार रचनाएँ गर्म गैसों के जेट हैं जो दृव्य और ऊर्जा को प्रकाशमंडल से वर्णमंडल में लाते हैं।

चित्र 5 :

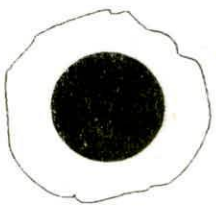

पूर्ण सूर्य ग्रहण के समय कोरोना का चित्र

पूर्ण सूर्य ग्रहण के समय कोरोना का चित्र ध्यान दें, कि यह कितना सममित है।

चित्र 6 :

इस चित्र में चुम्बकीय रज्जु को सूर्य के कोरोना में गहराई तक समाए हुए दिखाया गया है।

इस चित्र में चुंबकीय रज्जु को सूर्य के कोरोना में गहराई तक समाए हुंए दिखाया गया है। तीर के निशान द्वारा देखने वाले की स्थिति को दर्शाया गया है। इस दिशा से चुंबकीय क्षेत्र के अध्यारोपण को देखा जा सकता है।

चित्र 7 :

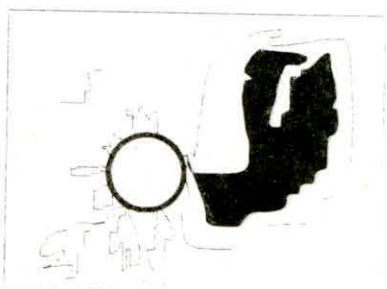

27 फरवरी, 2002 को सूर्य पर उठी किद्रनि का रेखा चित्र।

27 फरवरी 2002 को सूर्य पर उठे किद्रनि का रेखाचित्र चमकीले भाग को काली घनी गुफा में समाए हुए स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। •

3

इंद्रियरहित विविधरस भोगीः जीवाणु

• डा.देवेंद्र कुमार राय एवं
डा.श्रवण कुमार तिवारी

मानव अपने आस-पास घटित होने वाली घटनाओं, गतिविधियों एवं परिवेशीय दृश्यों का ज्ञान, भौतिक इंद्रियों की सहायता से प्राप्त करता है। ये इंद्रियां ऑख, नाक, कान, त्वचा और जिह्वा हैं जिनसे हमें क्रमश दृश्य, गंध, ध्वनि, स्पर्श और स्वाद का ज्ञान प्राप्त होता है। इन भौतिक इंद्रियों द्वारा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर ही मस्तिष्क प्राकृतिक परिघटनाओं का विश्लेषण करता है और तदनुसार प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। मानव एक विकसित प्राणी है। कभी-कभी हम ऐसी संवेदनाओं का भी अनुभव करते हैं जिन्हें ग्रहण करने के लिए कोई विशेष भौतिक इंद्रिय हमारे शरीर में नही हैं। जैसे-समय के व्यतीत होते जाने का अनुभव या भविष्य की किसी अप्रत्याशित घटना का आभास। ऐसी अनुभूतियां मस्तिष्क से संबद्ध होती हैं और कभी-कभी इन्हें "छठी इंद्रिय" का विषय कह दिया जाता है, जबकि मानव शरीर में कोई छठीं इंद्रिय नहीं है। इसी प्रकार यह भी देखा जाता है कि इन भौतिक इंद्रियों द्वारा प्राप्त संवेदनाएं एक दूसरी से प्रभावित हो जाती है, जैसे स्वाद और गंध की अनुभूति के लिए भी हमारी कौन-सी भौतिक इंद्रियां काम करती हैं इस संबंध में भी कुछ नहीं कहा जा सकता है।

अन्य जीव-जंतुओं को भी अपने पर्यावरण के अनुसार विभिन्न प्रकार की संवेदनाएं ग्रहण करनी होती हैं। अतः उनमें भी भौतिक इंद्रियां होती हैं, परंतु कोई जीव जिस पर्यावरण में सदैव जीवन यापन करता रहता है उसके अनुसार ही उसकी भौतिक इंद्रियां का विकास होता है। कुछ में उपर्युक्त पांचों इंद्रियां होती हैं। कुछ में कुछ इंद्रियां अत्यल्प विकसित या सर्वदा अनुपस्थित भी हो सकती हैं और कुछ में कोई इंद्रिय बहुत अधिक विकसित या सुग्राही हो सकती है जैसे - अंधे छछूंदर का जीवन ऐसे पर्यावरण में बीतता है जिसका परिवर्तन यदा-कदा ही होता है। मछलियों को सदैव द्रवस्थैतिक दाब के परिवर्तन का सामना करना होता है, अतः उनमें इस परिवर्तन के ज्ञान के लिए विशेष शक्ति (विशेष इंद्रिय) की आवश्यकता होती है। कुत्ते की घ्राण शक्ति बहुत तीव्र होती है - नर शलभ (male moth) की घ्राण शक्ति तो और भी तीव्र होती है। वह कई मील दूर से ही मादा शलभ की गंध को पहचान सकता है। कबूतर में दिशा ज्ञान की क्षमता अत्यंत विकसित होती हैं तथा जिन पेड़-पौधों को हम सर्वथा संवेदनहीन मानते हैं वे भी 'ऊपर-नीचे' का ज्ञान समझते हैं।

मानव और जीव-जंतुओं के अतिरिक्त संसार में बहुत बड़ी संख्या में अनेक प्रकार के सूक्ष्म जीवाणु या बैक्टीरिया पाए जाते हैं जिनके पास आंख, नाक आदि जैसी कोई भी भौतिक इंद्रिय नहीं होती, न ही उनके पास हाथ-पांव-जैसे कोई अंग होते हैं। फिर भी वे एक स्थान से दूसरे स्थान को जा सकते हैं और परिवेश की अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों को समझ सकते हैं। वे अपनी पसंद वाले पदार्थों, प्रोटीनों और एन्जाइमों को पहचानते हैं, वहां पर भारी संख्या में पहुंच सकते हैं और अपने लिए हानिकारक रसायनों को पहचान कर उनसे दूर भाग सकते हैं। उनमें चलने-फिरने के लिए कोई अंग नहीं होता है परंतु वे जल या काय के प्रवाह का सहारा लेकर इधर-उधर आ-जा सकते हैं। स्थिर जल, तथा

* प्रो. भौतिकी विभाग, विज्ञान संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, **पूर्व सहायक निदेशक, भौतिकी कक्ष का.हि.वि. वाराणसी

सीमित स्थानों में बंद जीवाणु भी स्थान-परिवर्तन कर सकते हैं। कुछ स्थिर जलवासी जीवाणुओं में फ्लौजिला या लंबी पूंछ-जैसी संरचना पाई जाती है जो इनको गतिशील बनाने में सहायक होती है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि फ्लौजिला की गतिविधि नन्हीं विद्युत् चालित मोटर से जुड़े प्रोपेलर-जैसी होती है। वैज्ञानिकों ने जीवाणुओं की गतिविधियों तथा उनकी संवेदनशीलता का अध्ययन करके जो जानकारी प्राप्त की है वह बड़ी ही रोचक है और उसे जानकर तुलसीदास जी की वे चौपाइयां याद आती हैं जो उन्होंने परमात्मा के विषय में दी हैं -

बिनु पग चलै सुनै बिनु काना। बिनु कर कर्म करै विधि नाना
और आनन रहित विविध रस भोगी।

जीवाणुओं की इस प्रकार की कुछ रोचक गतिविधियों की यहां विशेष रूप से चर्चा की गई है। वैज्ञानिकों ने यह जानकारी विशेषतः जल में निवास करने वाले जीवाणुओं के अध्ययन से प्राप्त की है। जीवाणुओं की संवेदनशीलता का अध्ययन करने के लिए, किसी एक प्रकार के जीवाणुओं के पाए जाने वाले विस्तृत क्षेत्र में, उपयुक्त स्थानों पर प्रत्याशित रसायन गिरा दिया जाता है या ताप, दाब, प्रकाश आदि की विभिन्न परिस्थतियां उत्पन्न की जाती हैं और पर्याप्त समय तक प्रेक्षण किया जाता है। यदि उन रसायनों या परिस्थितियों वाले स्थानों में जीवाणुओं की संख्या बढ़ती है तो माना जाता है कि वे इन रसायनों या परिस्थितियों को पसंद करते हैं। इस प्रकार अनेक प्रयोगों द्वारा जीवाणुओं की संवेदनशीलता ज्ञात की जा सकती है।

प्रयोगों द्वारा ज्ञात होता है कि बैक्टीरिया अनेक प्रकार के रसायनों तथा परिस्थितियों (प्रभावों) के प्रति संवेदनशील होते हैं। परंतु यह आवश्यक नहीं है कि सभी प्रकार के बैक्टीरिया सभी प्रभावों के प्रति संवेदनशील हों। साथ ही, वे सभी संवेदनाओं को एक साथ समन्वित करके कोई तर्कसंगत प्रतिक्रिया व्यक्त करने में भी समर्थ नहीं होते हैं। किसी वाह्य प्रभाव के प्रति अपनी संवेदनशीलता व्यक्त करने के व्यवहार को अनुचलन (taxis) कहते हैं और इस प्रवृत्ति को उस प्रभाव के साथ जोड़कर संबोधित करते हैं, जैसे-रसायनों के प्रति संवेदनशीलता को रसानुचलन (chems-taxis) कहते हैं, या प्रकाश के कारण उत्पन्न गतिशीलता को प्रकाशानुचलन (photo-taxis) कहते हैं।

जीवाणुओं की विभिन्न जातियों में जिस अनुचलन (पेक्सिस) का अध्ययन सर्वाधिक विस्तृत रूप में किया गया है, वह है केमोटैक्सिस। रसायन दो प्रकार के हो सकते हैं: लाभदायक, विशेषतः स्वास्थप्रद, और हानिकारक या आविषी (टॉक्सिक)। केमोटैक्सिस का प्रथम उल्लेख जर्मन सूक्ष्मविज्ञानी टी. डब्ल्यू.ऐन्जेलमैन (T.W.Engelman) ने 1001 में किया था। सन् 1083 में एक अन्य जर्मन सूक्ष्मविज्ञानी डब्लू. पेफ्फर ने भी इसी प्रकार का अध्ययन किया था। इनके प्रयोगों से यह पता लगा था कि **ई.कोलाई** (E.Coli) जैसे जीवाणु में ऋणात्मक एवं धनात्मक, दोनों प्रकार की संवेदनाएं पाई जाती हैं। सन् 1979 में अमरीकी सूक्ष्मविज्ञानी जूलियस एडलर ने ई.कोलाई के पसंदीदा और नापसंदीदा रसायनों की एक बृहत् सूची प्रकाशित की। यह देखा गया है कि अधिकांश पोषक पदार्थ (nutrients) जैसे शर्कराएं और एमिनो अम्ल पसंदीदा पदार्थ हैं और ई. कोलाई इनकी ओर विकर्षित होते है, जब कि हानिकारक पदार्थों से वे दूर भागते हैं। अम्लता और क्षारता से भी ई.कोलाई विकर्षित होते हैं और ये सदैव उदासीन पर्यावरण में रहना पसन्द करते हैं। प्रचलित शर्करा (सुक्रोज) से ये न तो आकर्षित होते हैं, न ही विकर्षित। इन प्रयोगों से प्रकट होता है कि ई. कोलाई की केमोटैक्सिस की व्याख्या सरल नहीं है। इसके किसी रसायन की ओर आकर्षित होने का यह अर्थ नहीं है कि वे इस रसायन की ओर सीधे चलते जाते हैं। वास्तव में वे तो यादृच्छिक गति करते हैं। परंतु ज्यों ही उन्हें (ई.कोलाई को) यह आभास होता है कि आकर्षक रसायन की सांद्रता घट रही है, व अपनी गति की दिशा बदलने का प्रयास करते हैं और उस स्थान की ओर बढ़ने का प्रयास करते हैं जहां सांद्रता अधिक होती है। इसका मार्ग टेढ़ा-मेढ़ा होता है, परंतु कई अन्य जीवाणु सीधे मार्ग पर भी चलते देखे जाते हैं। रास्ते की प्रकृति का यह अंतर जीवाणुओं की अपनी गतिक विषमताओं के कारण होता है। चूंकि जीवाणु प्रायः आगे की

ओर गति नहीं कर सकते, अत: वे केमोटेटैक्सिस में, वास्तव में एक ऋणात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं जबकि यह परिणाम धनात्मक प्रतीत होता है। ई. कोलाई आकर्षक रसायन की कमी वाले स्थान से दूर भागने का प्रयास करता है, और उस स्थान पर पहुंच जाता है, जहां आकर्षक पदार्थ अधिक होता है। ई.कोलाई द्वारा रसायनों के प्रति संवेदनशील होने की प्रक्रिया का गहराई से अध्ययन किया गया है। इस जीवाणु की कोशिका मांसीय (सॉसेज) जैसी होती है, परंतु इस पर दो त्वचाएं होती हैं। भीतरी त्वचा पतली और भंजनशील होती है और कोशिका द्रव्य (साइटोप्लाज़्म) को घेरे रहती है। बाहरी त्वचा अपेक्षाकृत दृढ़ होती है जो कोशिका के आकार को बनाए रखती है। शर्करा या अमिनो-अम्ल-जैसे सामान्य अणु बाहरी त्वचा को भेद कर दोनों त्वचाओं के वीच वाली जगह में आ सकते हैं, परंतु बड़े अणु, जैसे स्टार्च और प्रोटीन के अणु बाहरी त्वचा को नहीं भेद सकते। ई. कोलाई के आकर्षक अणुओं को पहचानने वाले विशिष्ट प्रोटीन, भीतरी त्वचा से संबद्ध होते हुए भी बाह्य त्वचा से बाहर तक निकले रहते है। इस बीच वाले स्थान में आए आकर्षक अणु को पकड़ लेते हैं। इन विशिष्ट प्रोटीनों को ग्राही (accepter) अणु कहते हैं। ग्राही द्वारा आकर्षक अणु को पकड़ने की प्रक्रिया में ग्राही अणु का कोशिका द्रव्य (साइटोप्लाज्म) में धंसा हुआ सिरा अपना आकार बदल लेता है। द्रव्य में स्थित एक विशिष्ट एन्जाइम 'ग्राही' प्रोटीन के निकले हुए भाग में एक-दो विशिष्ट स्थानों पर मेथिल ग्रुप (CH_3) जोड़ देता है। अन्य दो प्रोटीन भी इस क्रिया में भाग लेते हैं और इन सभी रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप बैक्टीरिया को गति प्रदान करने वाली मोटर सक्रिय हो जाती है । अत: ई. कोलाई गति करने लगता है। इसके साथ ही कुछ अन्य रासायनिक क्रियाएं भी होती हैं जिनकी सहायता से 'ग्राही' प्रोटीन आकर्षक अणु से छुटकारा पा जाता है और नए आकर्षक अणु को पहचानने के लिए पुन: तैयार हो जाता है। सबसे अधिक रोचक बात यह है कि इस प्रक्रिया में ग्राही प्रोटीन में जो मेथिल ग्रुप जुड़ गये थे, उनमें से सभी एक साथ नहीं हटाए जाते हैं, और न हटाए गए इन ग्रुपों की संख्या अल्पकालिक स्मृति (memory) की भांति काम करती है। तदनंतर यह स्मृति कोशिका को अपनी गति की दिशा बदलने के लिए निर्देशित करती है। ऐसा प्रतीत होता है कि जानवरों और मनुष्यों की भांति बैक्टीरिया को भी जीवन यापन के लिए स्मृति की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार की जानकारी प्राप्त करने के लिए जैवरासायनिक और आनुवंशिकीय, दोनों प्रकार के प्रयोगों की आवश्यकता होती है। वैज्ञानिकों के अनुसार संवेदना और प्रगतिशीलता के लिए ई. कोलाई में लगभग 40 जीनो (genes) के समन्वित प्रयास की आवश्यकता होती है। इनमें से 10 जीन केमोटैक्सिस के लिए उत्तरदायी पाए गए हैं। चूंकि ई. कोलाई में रसायनों को पहचानने के लिए कोई विशेष अंग नहीं होता , अत: 'ग्राही' प्रोटीन कोशिका की भीतरी त्वचा पर चारों ओर वितरित रहते हैं। कुछ ग्राही प्रोटीन केवल किसी विशिष्ट अणु के प्रति ही संवदेनशील होते है, जब कि कुछ ग्राही, रसायनों के एक समूह के प्रति संवेदनशील होते हैं।

ई.कोलाई उन जीवाणुओं में से एक है जो आक्सीजन में श्वास तो लेते हैं, पर आक्सीजन के बिना भी रह सकते हैं। अत: इसके लिए यह आवश्यक है कि ये आक्सीजन के प्रति संवेदनशील हों। इस संवेदनशीलता को वातानुचलन (airotoxis) कहते हैं। ऐंजैलमैन ने इस पर प्रयोग करने के लिए बैक्टीरिया को एक सूक्ष्मदर्शी की स्लाइड पर रखा, जिस पर जल के साथ कुछ हरे पौधों की कोशिकाएं भी थी। जब इन हरित कोशिकाओं पर टार्च से प्रकाश डाला गया तो ये कोशिकाएं प्रकाश-संशलेषण की प्रक्रिया से आक्सीजन उत्पन्न करने लगती हैं और जीवाणु उन पर टूट पड़ते हैं। आधुनिक शोध से यह ज्ञात हुआ है कि जिन जीवाणुओं में केमोटैक्सिस का गुण नहीं है, उनमें से भी कुछ में एयरोटैक्सिस का गुण पाया जाता है, जिससे यह स्पष्ट हुआ है कि इन दोनों गुणों की कारक-प्रक्रियाएं भिन्न-भिन्न होती हैं। यह माना जाता है कि श्वसन क्रिया से संबंधित फीड-बैक ही एयरोटैक्सिस का मूल उद्गम है। बैक्टीरिया की श्वसन प्रक्रिया में विद्युत

आवेशित कण भीतरी त्वचा के आर-पार प्रवाहित होते हैं। यह प्रक्रिया साल्मोनेला (Salmonella) नामक बैक्टीरिया में रसानुचलन (केमोटैक्सिस) से भी संबंध पाई गई है। यह भी देखा गया है कि यदि ऑक्सीजन की सांद्रता अधिक हो तो ई.कोलाई तथा सालमोनेला, दोनों ही के लिए यह स्थान विकर्षण का केंद्र हो जाता है। जो जीवाणु प्रकाश-संशलेषण द्वारा co_2 कार्बोहाइड्रेट में परिवर्तित करते हैं, वे स्वभावत: प्रकाश की ओर आकर्षित होते हैं, अर्थात् उनमें फोटो-टैक्सिस का गुण होता है। परंतु कुछ जीवाणुओं का प्रकाशसंश्लेषण-तंत्र और भी आदिम (primitive) होता है और वे ऑक्सीजन की उपस्थिति में कार्य नहीं करते और सामान्य परिस्थिति (अर्थात् ऑक्सीजन की उपस्थिति) में भी ऑक्सीजन नहीं उत्पादित करते हैं। केमोटैक्सिस में, जैसे बैक्टीरिया आकर्षक रसायन की अनुपस्थिति से दूर भागते हैं, उसी प्रकार फोटोटैक्सिस में भी जीवाणु अंधेरे से दूर भागते हैं। माइक्रोस्कोप के स्लाइड पर टॉर्च से रोशनी का एक छोटा-सा धब्बा डालने पर बैक्टीरिया यादृच्छिक दिशाओं में भागते हुए दिखाई पड़ते हैं। परंतु ज्यों ही वे प्रकाशित भाग की बाहरी सीमा पर पहुंचते हैं, एकाएक रुक जाते हैं और अपनी दिशा बदल देते हैं। ऐन्जलमैन ने जब इस व्यवहार को सर्व प्रथम देखा तो इसे "प्रघाती गति" या "शॉक-मोशन" का नाम दिया, क्योंकि देखने से ऐसा प्रतीत होता था कि ये जीवाणु प्रकाश-क्षेत्र में फंस गए हैं और जब वे इससे बाहर निकलने का प्रयास करते हैं तो उन्हें इस क्षेत्र की परिधि (सीमा) पर एक अदृश्य अवरोध का सामना करना पड़ रहा है। यदि प्रकाश-क्षेत्र को एक प्रिज्म की सहायता से कई रंगों में विभजित कर दिया जाता है तो यह देखा जाता है कि मखमली रगं के बैक्टीरिया लाल रंग के क्षेत्र में अधिक तथा नील-हरित क्षेत्र में कम सघनता से एकत्रित होते हैं। लाल रंग इन जीवाणुओं के क्लोरोफिल द्वारा और नील-हरित रंग इनके केरोटीन (kerotin) द्वारा अवशोषित होता है। सन् 1976 ई. में जापानी वैज्ञानिकों द्वारा यह सिद्ध किया गया कि यदि बैक्टीरिया में क्लोरोफिल न हो तब भी वे प्रकाश द्वारा आकर्षित होते हैं। इनमें फोटो-टैक्सिस की प्रक्रिया की व्याख्या अभी स्पष्ट रूप से नहीं समझी जा सकती है।

जो बैक्टीरिया अधिक नमकीन वातावरण में रहते हैं, वे भी प्रकाश के प्रति संवेदनशील पाए जाते हैं। इनमें क्लोरोफिल द्वारा होने वाला प्रकाश-संश्लेषण नहीं होता है, परंतु इनमें कुछ ऐसे रंगीन रसायन पाए जाते हैं जो अधिक विकसित जीवों की आखों में पाए जाते हैं। ये जीवाणु हरित प्रकाश के प्रति सबसे अधिक संवेदनशील होते हैं। नीला प्रकाश इन्हें विकर्षित करता है। यद्यपि ई.कोलाई और सालमोनेला, दोनों ही प्रकाश का कोई ज्ञात उपयोग नहीं करते, फिर भी वे तीव्र प्रकाश के प्रति संवेदनशील होते हैं, और तीव्र प्रकाश इनकी कोशिकाओं के कुछ आवश्यक अणुओं, जैसे- फ्लैविन (flavins) को हानि पंहुचाता है। अत: उनका इस प्रकार का व्यवहार स्वाभाविक है।

जीवाणु ताप के प्रति भी संवेदनशील होते हैं, यह तथ्य भी ऐन्जेलमैन ने ही सन् 1883 में ज्ञात किया था । यदि बैक्टीरिया जिस माध्यम में रखे गए हों, उसमें ताप-प्रवणता हो तो यह देखा जाता है कि गर्म स्थानों पर वे तीव्रतर गति कर रहे होते हैं। यदि माध्यम को एकाएक (सहसा) ठंडा कर दिया जाए तो वे उलटने-पुलटने लगते हैं, और ऐसा लगता है कि वे गर्माहट की खोज में हैं। यदि किसी बेलनाकार नलिका में भरे माध्यम का एक सिरा 40^0 C पर और दूसरा सिरा 10^0 C पर रखा जाए तो ई.कोलाई लगभग 34^0 C वाले स्थान पर एकत्र होने लगते हैं। प्रश्न उठता है कि वे उपयुक्त ताप का ज्ञान कैसे प्राप्त करते हैं? जापानी वैज्ञानिकों द्वारा हाल ही में किए गए प्रयोगों से यह स्पष्ट हुआ है कि सेरीन (serine) नामक अम्ल को पहचानने वाली युक्ति ही ताप मापी का भी काम करती है । गर्मी के कारण भी "ग्राही" प्रोटीन में उसी प्रकार के परिवर्तन (जैसे मेथिल ग्रुपों का संयोजन) होते हैं, जैसे सेरीन को पहचानने में होता है। यह भी देखा गया है कि ऐसे जीवाणु जिनमें केमोटैक्सिस का गुण नहीं होता है वे थर्मोटैक्सिस का गुण भी प्रदर्शित नहीं करते हैं। जीवाणु अपने वातावरण में उपस्थित जल की सांद्रता (आर्द्रता) के प्रति संवेदनशील पाए गए हैं। यद्यपि ये

जलीय वातावरण में ही रहते हैं, फिर भी उनके परिवेश में उपस्थित पानी में अन्य पदार्थों की उपस्थिति जल के गुणों को प्रभवित करती है। जैसे - यदि जल में नमक की सांद्रता अधिक हो तो अतिसंवेदनशील जीवाणुओं की कोशिकाओं में से जल निकल कर बाह्य वातावरण में जाने लगता है और कोशिका में जल की कमी हो जाती है। अधिक जल निकलने पर कोशिका मृत हो जाती है। इसी कारण नमक को अनेक खाद्य पदार्थों में, संरक्षी के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। कोशिका को शुष्क करने वाले प्रभाव को परासरण दाब (osmotic pressure) से मापा जाता है। इसी कारण, बैक्टीरिया के पर्यावरण में जल में उपस्थित पदार्थों के कारण जो गतिशीलता उत्पन्न होती है, उसे परासरणानुचलन (osmotaxis) नाम दिया गया है। जल में घुले पदार्थों की अधिकता की खोज सर्वप्रथम एक बेल्जियन वैज्ञानिक जे. मसार्ट ने सन् 1889-1891 के दौरान की थी। आधुनिक शोध से यह तो सिद्ध हो गया है कि ऑस्मोटैक्सिस में प्रयुक्त संवेदक (sensor) और गति प्रदान करने वाली मोटर से इसको संबद्ध करने वाली युक्ति, ये दोनों ही केमोटैक्सिस में प्रयुक्त युक्तियों से भिन्न हैं। परंतु इनका वास्तविक स्वरूप अभी ज्ञात नहीं है।

उपर्युक्त संवेदनशीलताओं के अतिरिक्त, कुछ अन्य प्रकार के जीवाणुओं में अनेक प्रकार के संवेदनों के प्रति भी सुग्राहिता देखी गई है, जैसे - सन् 1975 में पहली बार कुछ ऐसे जीवाणु पाए गए जो पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र का अनुभव कर सकते हैं। वे अपने आप को पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र की दिशा में अभिविन्यस्त कर लेते हैं, और उत्तरी गोलार्ध में उत्तर की ओर तथा दक्षिणी गोलार्ध में दक्षिण की ओर गति करते हैं। इस प्रकार के जीवाणुओं की लगभग आधा दर्जन जातियां ज्ञात हुई हैं। इन्हें पृथक् करना सरल है, क्योंकि किसी साधारण चुंबक की सहायता से पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र को प्रभावित करके इन्हें चुंबक के ध्रुव के पास एकत्र किया जा सकता है। ये एक दूसरे को भी चुंबकीय दृष्टि से प्रभावित करते हैं और एक ही दिशा में व्यवस्थित हो जाते हैं। इस प्रकार के बैक्टीरिया मर जाने पर भी चुंबकीय बने रहते हैं। ऐसा समझा जाता है कि अवसादी (sedimentary) शैलों का चुंबकत्व, इसी प्रकार की मैग्नेटोटैक्सिस प्रदर्शित करने वाले जीवाणुओं के जीवाश्मों की उपस्थित के कारण होता है। उनकी कोशिकाओं में सूक्ष्म, किन्तु अत्यंत समांगी चुंबकीय लौह खनिज-मैग्नेटाइट के क्रिस्टल होते हैं। जीवाणुओं की एक जाति में चुंबकीय-लौह सल्फाइड के मणिभ पाए गए हैं। ये मणिभ वास्तव में आंतरिक दिशा सूचकयत्रों की भांति कार्य करते हैं; परंतु ये किस प्रकार जीवाणु की गति को प्रभावित करते हैं और जीवाणु के लिए क्यों उपयोगी होते हैं यह फिलहाल नहीं समझा जा सकता है। चूंकि मैग्नेटोटैक्सिस प्रदर्शित करने वाले अधिकतर बैक्टीरिया वायुविहीन स्थानों या कम वायु में रहने वाले होते हैं अतः यह सुझाव दिया गया है कि मैग्नेटोटैक्सिस इन्हें पृथ्वी के भीतर उस स्थान तक ले जाने में सहायक होता है, जहां वायु की मात्रा उचित स्तर पर हो।

ई.कोलाई में विद्युत् धारा के प्रति भी संवेदनशीलता पाई गई है, जिसे गैल्वैनोटैक्सिस कहते हैं। इसकी खोज भी बहुत पहले ही सन् 1889 ई. में जर्मन वैज्ञानिक एम. बेरवोर्न द्वारा की गई थी। यदि ई.कोलाई से भरे किसी माध्यम में दो विद्युदग्र (इलेक्ट्रोड) डाल कर इतनी कम शक्ति की दिष्ट धारा प्रवाहित की जाए कि माध्यम में गर्माहट न उत्पन्न हो सके, तो यह देखा जाता है कि बैक्टीरिया धनात्मक इलेक्ट्रोड अर्थात् एनोड की ओर गतिशील हो जाते हैं। यदि धारा उलट दी जाती है तो बैक्टीरिया भी अपनी गति की दिशा उलट देते हैं। सालमोनेला बैक्टीरिया में एक ऐसी जाति पाई गई है जो कैथोड (ऋणाग्र) की ओर आकृष्ट होती है । चूंकि गैल्वैनोटैक्सिस का गुण बैक्टीरिया की मृत्यु के बाद भी बना रहता है। अतः यह मानना स्वाभविक है कि मैग्नेटोटैक्सिस में उपस्थित चुंबकीय मणिभों की ही भांति गैल्वैनोटैक्सिस प्रदर्शित करने वाली जातियों में विद्युत् डाइपोल (द्वि-ध्रुव) उपस्थित रहते हैं। कुछ जीवाणु ठोस सतहें खोज कर उन पर चिपके रहते हैं। इन्हें टैक्टोफिलिक (tactophilic) कहा जाता है। इनमें टैक्सिस नहीं होती है। इसके विपरीत कुछ बैक्टीरिया ठोस सतहों से बचते हैं।

क्या इनको स्पर्श का बोध (त्वचा का गुण) होता है?

क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि ये जीवाणु, जो मीटर के लाखवें भाग (10^{-5}m) के बराबर होते हैं और जिनमें शारीरिक अगों एवं इंद्रियों-जैसी संरचनाएं नहीं होती, वे भी किसी न किसी प्रकार अपने पर्यावरण में पाए जाने वाले इतने सारे पदार्थों एवं प्रभावों के प्रति संवेदनशील होते हैं? इनमें से अनेक संवेदनाएं तो किसी न किसी रूप में हमारी भौतिक इंद्रियों द्वारा संसूचित होने वाली संवेदनाओं-जैसी ही हैं; जैसे - रसायनों के प्रति संवेदना, स्वाद-जैसी, वायु के प्रति संवदेना, (त्वचा) जैसी ही है । हम जिन पांच भौतिक इंद्रियजन्य ज्ञान से परिचित हैं, प्रकृति में उनसे कहीं अधिक प्रकार के ज्ञान या प्रभाव के प्रति संवेदनशील प्राणी विद्यमान हैं। अच्छा ही है कि हम इन तमाम संवेदनाओं से मुक्त हैं, क्योंकि, यदि हमारा शरीर भी इन सभी प्रकार के बहुसंख्यक प्रभावों के प्रति संवेदनशील होता तो हमारा जीवन शायद दूभर हो जाता।

विज्ञान समाचार

मिलनसार हैं तो होगी याददाश्त बेहतर

लोगों से मिलना-जुलना, दोस्त बनाना, समाज सेवा के कामों में आगे से आगे रहना, आपके जीवन को नए मायने देता है, जिंदगी को और सुखद बनाता है। अगर आपका स्वभाव ऐसा नहीं है तो अपने में थोड़ा बदलाव लाएं क्योंकि यह स्वभाव आपके लिए काफी फायदेमंद साबित हो सकता है। 'हॉवर्ड स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ' के शोधकर्ताओं ने एक दिलचस्प अध्ययन के तहत इस बात को साबित करने का प्रयास किया है कि मिलनसार स्वभाव आपकी बढ़ती उम्र में फायदेमंद होता है। यह स्वभाव आपकी याददाश्त को अच्छा रखता है। इसलिए आप कितने ही उम्र के क्यों न हो जाएं मगर समाजिक बनें, लोगों से मिलना जुलना न छोड़े, समाज सेवा आदि कामों में अपने को जरूर व्यस्त रखें।

वैज्ञानिक मानते हैं कि बढ़ती उम्र के साथ-साथ याददाश्त कमजोर होने लगती है और इस वजह से पूरा व्यक्तित्व प्रभावित होता है। पूर्व में हुए अध्ययन इस बात की तरफ इशारा करते हैं कि वृद्ध लोगों में सक्रिय जीवन और सामाजिक जीवन शैली उन्हें डिमेन्शिया (भूलने की बीमारी) से बचा सकती है और स्मरण शक्ति भी प्रभावित नहीं होती। अमेरिका की 10 प्रतिशत आबादी, 65 या उससे ज्यादा उम्र के लोग इस रोग से ग्रस्त हैं। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए शोधकर्ता 'लीजा बर्कमन' और 'मारिया ग्लीमर' ने सर्वे के तहत उम्रदराज लोगों की याददाश्त को 1998 से 2007 तक परखा। दो-दो साल के अंतराल में प्रतिभागियों से 10 सामान्य से नाम पढ़ने को दिए जाते और फिर तुरंत ही उनसे कहा जाता कि जितने नाम याद हो पाएं हैं उन्हें पढ़ें। सर्वे के दौरान इन सभी प्रतिभागियों का लोगों के साथ तालमेल, पड़ोसियों से रिश्ता, समाज सेवा के प्रति झुकाव, बच्चों व माता-पिता से उनके संबंधों को भी जाना गया।

अध्ययन से पता चला कि इन सालों में जो व्यक्ति लोगों से ज्यादा जुड़े रहे उनकी याददाश्त कम प्रभावित हुई। इस अध्ययन को अमेरिकन जनरल ऑफ पब्लिक हेल्थ में प्रकाशित किया गया है। इस लिए जरूरी है कि अपने बुजुर्गों को ज्यादा से ज्यादा सामाजिक कार्यों में जोड़े। यह उनके स्वास्थ्य के साथ ि ाग को भी तरोताजा रखेगा।

4

ग्रामीण ऊर्जा और रोजगार का सशक्त माध्यम-गोबर गैस

- सावित्री देवी*

भारत-जैसे विकासशील और कृषि प्रधान देश में जहां दुनिया में सबसे अधिक पशुओं की संख्या हो सर्वाधिक मानव आबादी गावों में रहती हो, रोजगार का सबसे बड़ा साधन खेती ही हो, वहां बायोगैस के निर्माण के लिए कच्चे माल की उपलब्धता प्रचुर और बहुत आसान है। भारत में प्रतिवर्ष लगभग एक अरब पैंतीस करोड़ मैट्रिक टन गोबर एवं पशु अपशिष्ट उत्पन्न होता है, जिससे बायोगैस बनाकर देश की 75 प्रतिशत ऊर्जा की जरूरतों को पूरा किया जा सकता है। भारत में पशुओं से प्राप्त अधिकांश गोबर का कंडा बनाकर ईंधन के रूप में जलाकर प्रयोग किया जाता है। विशेषज्ञों के अनुसार यदि एक टन गोबर को कंडे के रूप में ईंधन के लिए जलाया जाता है तो उससे 58,750 कैलोरी ऊर्जा की प्राप्ति होती है। इतने ही गोबर से बने बायोगैस से 1,44,00 कैलोरी ऊर्जा की प्राप्ति होती है। गोबर के कंडे को बनाने, सुखाने में काफी श्रम और समय खर्च होता है। इसके साथ ही गोबर के कंडे को सूखा और सुरक्षित रखने के लिए भी व्यवस्था करनी पड़ती है। कुल मिलाकर इसके 25 प्रतिशत स्थान, समय और श्रम से हम उससे लगभग तीन गुना से अधिक बायोगैस ईंधन प्राप्त कर लेते हैं।

जलावन के रूप में कंडे से निकलने वाले धुंए से भोजन पकाने वाली महिलाओं के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। वे फेफड़े और श्वास नलिका संबंधी कई रोगों का शिकार हो जाती हैं। इसके अलावा बर्तनों में लगने वाली कालिख को छुड़ाने के लिए अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है। इसकी तुलना में बायोगैस ईंधन के जलने से (1) कोई धुआं नहीं उठता, जिससे भोजन पकाने वालों का स्वास्थ्य सुरक्षित रहता है, (2) बर्तनों में कालिख नही लगती, (3) चूल्हे की बची राख कणकीय प्रदूषण पैदा करती है, जबकि गैस निर्माण के बाद निकला हुआ अपशिष्ट श्रेष्ठतम जैविक खाद के रूप में प्रयुक्त होता है। इस जैविक खाद से कृषि उत्पादों में 15 प्रतिशत तक की बढ़ोतरी होती है।

भारत में बायोगैस की संभावनाएं:

देश में बायोगैस संयंत्रों का विस्तार और प्रचार-प्रसार तेजी से हो रहा है। यहा निर्धारित लक्ष्य से भी अधिक संख्या में बायोगैस संयंत्र स्थापित हो रहे हैं। वर्तमान समय में समन्वित विकेंद्रीकृत अपशिष्ट पुनश्चक्रण एवं ऊर्जा उत्पादन कार्यक्रम के अंर्तगत सामुदायिक एवं निजी दोनों श्रेणी के बायोगैस संयंत्रों की स्थापना हो रही है। बैयोगैस संयंत्र प्रदर्शन कार्यक्रम के माध्यम से गांव की महिलाओं की स्वास्थ्य रक्षा के लिए सुरक्षित रसोई गैस, पेयजल तथा बिजली उपलब्ध कराने की योजना चल रही है जिसके अंर्तगत 4000 से भी अधिक बायोगैस संयंत्र लगाए जा चुके हैं।

* सामाजिक कार्यकर्त्री , लोकोत्थान समिति, वाराणसी, उ.प्र - 221005

ग्राम विकास में बायोगैस की भूमिका:

बायोगैस संयंत्र समग्र ग्राम विकास का एक सशक्त गांधीवादी उपकरण है। इसके माध्यम से जहां ग्रामीणों को स्व-उत्पादित ऊर्जा मिलती है, वहीं स्व-उत्पादित जैविक खाद भी मिलती है। आज जब हमारा संपूर्ण भारतीय कृषक समुदाय रासायनिक खादों के विकल्प स्वरूप जैविक खादों की दिशा में सक्रिय है, वहीं बायोगैस संयंत्रों से गांवों में ही उत्पादित ऊर्जा और उर्वरक की आवश्यकता को गांव में उपलब्ध संसाधनों से ही पूरा किया जाना संभव है। आज यह ग्रामीण स्वावलंबन और गावों की संपूर्ण आत्मनिर्भता के गांधीवादी सिद्धांत के सर्वथा अनुरूप एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में सामने आ रहा है।

सामुदायिक विकास और ग्रामीण महिलाओं की बेहतरी का साधन: निजी पारिवारिक संयंत्रों की तुलना में सामुदायिक संयंत्र आज ज्यादा करागर साबित हो रहे हैं। गुजरात के मेहसाणा जनपद के मोतीपुरा गांव में स्थापित सामुदायिक बायोगैस संयंत्र की चर्चा आज सारी दुनिया में हैं। उत्तरी गुजरात के मेहसाणा मुख्यालय से दो किलोमीटर दूर स्थित इस गांव का सामुदायिक बायोगैस संयंत्र सहकारिता, आपसी भाईचारे औरसहयोग का आदर्श नमूना बन गया है। आज मोदीपुरा गांव में स्थिति यह है कि यदि प्रभावशाली लोग न भी चाहें तब भी यहां बायोगैस संयंत्र संचालन में कोई रुकावट नही आ सकती है। इस संयंत्र के संचालन में महिलाओं की भागीदारी ने विशेष बल प्रदान किया है।

इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण कर्नाटक प्रांत के तुमकुर जनपद के पुरा गांव में भी देखने को मिलता है। संयंत्र से चलने वाले पेयजल पंप से आज इस गांव की औरतों को दूर से ढोकर पानी लाने की परेशानी से छुटकारा मिल गया है। यही नही, अब तो यहां के किसान अपने खेतों में उगने वाली फसलों के लिए रासायनिक खादों का प्रयोग बिल्कुल ही नहीं करते। आज इस गांव के लोग बायोगैस से डीजल ईंधन चलाकर बिजली भी पैदा कर रहे हैं। मौसम की गड़बड़ी के मौकों पर इंजन को डीजल से चलाकर बिजली की आपूर्ति की जाती है। इन गावों में बायोगैस को पाइपों द्वारा लोगों की रसोई तक पहुंचाया जाता है। प्रति-दिन सूरज डूबने के बाद चार घंटे तक बायोगैस संयंत्र से बिजली पैदा करके उससे गांव के कुएं का पंप चलाकर, एक तालाब में पानी इकट्ठा कर उसे नाममात्र के शुल्क पर नलों के द्वारा ग्रामवासियों के घरों तक पहुचाया जाता है। गांव की आटा चक्की भी बायोगैस से ही चलती है। इस संयंत्र से निकलने वाली खाद ग्रामीणों में बिना कीमत के वितरित की जाती है। आज पूरे गांव में संयंत्र से निकलने वाले स्लरी (कर्दम) से बनी खाद इतनी ज्यादा मात्रा में उपलब्ध हो जाती है कि यहां के किसान अब रासायनिक खादों का उपयोग नहीं करते। इसी प्रकार कर्नाटक प्रांत के ही सिमोगा और बारादिगैर, एर्नाकुलम केरल के पाम्बाकुड़ा, मोरीगोव, तथा असम के आलमीघाट-जैसे गावों में सामुदायिक आधार पर चलने वाले बायोगैस संयंत्रों ने इन गांवों का कायाकल्प कर दिया है।

जहां कहीं सामुदायिक बायोगैस संयंत्र लगे और उनका प्रबंध ठीक-ठाक रहा, वही ग्रामीण महिलाओं और बच्चों की कठिनाइयां काफी घटी हैं। इन क्षेत्रों की महिलाओं को जलावन लकड़ी की तलाश में जंगलों में नही भटकना पड़ता और न धुआं भरे दमघोटू वातावरण में खाना पकाना पड़ता है। कालिख न लगने के कारण भोजन पकाने के बर्तनों की सफाई भी बहुत आसान हो गई है। कुल मिलाकर बायोगैस संयंत्रों ने सर्वाधिक लाभ महिलाओं को ही पहुचाया है। उनका जीवन आसान, सुविधाजनक और आरामदेह हुआ है। आज देश भर में लगभग साढ़े तीन हजार सामुदायिक बायोंगैस संयंत्र स्थापित किए जा चुके हैं। इनमें से ज्यादातर ठीक-ठाक काम कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त लगभग 32 लाख से भी ज्यादा निजी बायोगैस संयंत्र भी लगाए जा चुके हैं।

आज देश भर में निजी स्तर पर स्थापित बायोगैस संयंत्रों से प्रति वर्ष 40 लाख टन के आस-पास जलावन लकड़ी की बचत भारतीय गांवों में हो रही है। इसके अलावा ग्रामीणों को 9.20 लाख जैविक खाद की भी प्राप्ति हो रही

है। देश में उपलब्ध पशुओं की संख्या को देखते हुए अभी एक करोड़ बीस लाख के करीब और निजी बायोगैस संयंत्रों की स्थापना हो सकती है। देश में ऊर्जा के अभाव और मांग को देखते हुए इस प्रक्रिया में ग्रामीण युवाओं के लिए रोजगार की संभावना स्पष्ट दिखती है।

ग्रामीण रोजगार का साधनः

आज बेरोजगारी की समस्या राष्ट्र के विकास में बड़ी बाधा है। देश की तरक्की के लिए काम करने योग्य लोगों विशेषकर युवाओं के पास रोजगार का होना अनिवार्य तथ्य है। देश के शहरों की तुलना में गांवों में रोजगार के अवसरों की ज्यादा कमी है। गांवों में (1) शिक्षा की कमी, (2) प्रशिक्षण का अभाव, (3) गरीबी, (4) संसाधनों का अभाव, (5) पूजी की कमी, (6) उत्पादित माल के खपत की समस्या, (7) संचार एवं यातायात साधनों की कमी, (8) ऊर्जा की कमी, आदि ऐसी तमाम समस्या हैं जिनके चलते गांवों में रोजगार के अवसरों में अपेक्षित वृद्धि नहीं हो पा रही है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि हम गांवों के लिए ऐसे रोजगार साधनों की तलाश करें जिनके लिए कच्चे माल के रूप में गोबर और अन्य कार्बनिक पदार्थ हमें गांवों से ही प्राप्त होते हैं तथा उत्पादित ऊर्जा (बायोगैस) और जैविक खाद की शत-प्रतिशत खपत गांव में ही हो जाती है।

बायोगैस के लाभकारी पक्षः

(1) यह ग्रामीण संसाधनों पर आधारित होती है,

(2) उत्पाद भी पूरी तरह गावों में ही खप जाते हैं,

(3) कृषि उत्पादों में वृद्धि होती है,

(4) मृदा सशक्त होती है,

(5) गैस आधारित कुटीर उद्योगों के पनपने का अवसर मिलता है,

(6) महिलाओं के स्वास्थ्य की सुरक्षा होती है,

(7) पेयजल की उपलब्धता में वृद्धि होती है,

(8) स्थानीय संसाधनों पर आधारित रोशनी और ईंधन मिलता है,

(9) संस्थापन और रखरखाव में रोजगार मिलता है,

(10) वन एवं पर्यावरण की सुरक्षा होती है,

(11) सामुदायिक भावनाओं में वृद्धि होती है, और

(12) कृषि उत्पादों में वृद्धि होती है।

गोबर गैस के माध्यम से रोजगार

बायोगैस उत्पादन प्रक्रिया के अंतर्गत रोजगार के साधन के रूप में निम्नलिखित संभावनाएं हैं :

(1) *बायोगैस संयंत्र स्थापना में रोजगार की संभावनाएंः* बायोगैस संयंत्रों की स्थापना और उनकी देखरेख में ग्रामीणों को रोजगार उपलब्ध कराया जाना संभव है। इस काम में कुशल और अकुशल दोनों ही प्रकार के श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है। अतः ग्रामीण क्षेत्र के अशिक्षित और अल्पशिक्षित युवकों को बायोगैस संयंत्र निर्माण का प्रशिक्षण प्रदान कर इस काम में लगातार रोजगार उपलब्ध कराया जा सकता है।

(2) *प्रचार-प्रसार में रोजगारः* बायोगैस संयंत्र की स्थापना के लिए भारत सरकार का वैकल्पिक ऊर्जा विभाग बहुत सक्रिय है। इस कार्य के लिए खादी ग्रामोद्योग कमीशन को नोडल एजेन्सी के रूप में मान्यता प्राप्त है। खादी ग्रामोद्योग कमीशन बायोगैस संयंत्र संथापना में छूट प्रदान करने के साथ ही ग्रामीणों को बायोगैस संयंत्र स्थापना के लिए समझाबुझा कर राजी करने वाले युवकों को कमीशन के रूप में परिश्रमिक प्रदान करता है।

बायोगैस संयंत्र के लिए ऋण देने की भी व्यवस्था है। अतः ग्राम विकास और सामाजिक कार्यों में रुचि रखने वाले बेरोजगार युवकों के लिए बायोगैस स्थापना के लिए ग्रामीणों को समझाबुझा कर तैयार करने, बैंक से ऋण दिलाने से लेकर खादी ग्रामोद्योग कमीशन के लिए मध्यस्थ के रूप में काम करने में स्पष्ट रोजगार संभावनाएं हैं। इस कार्य में लगकर कई ग्रामीण युवक रोजगार भी प्राप्त कर रहे हैं।

गैर-सरकारी समाजसेवी संगठनों के माध्यम से रोजगारः

आज भारत में गैर-सरकारी समाजसेवी संस्थाओं की भूमिका

महत्वपूर्ण हो गई है। देश के विकास में ये गैर-सरकारी संस्थाएं कई क्षेत्रों में कार्य कर रही हैं। इन्हें सरकार के अलावा कई विदेशी संस्थाओं से भी आर्थिक संबल प्राप्त होता है। इसके अलावा व्यावसायिक कंपनियां इन्हें अनुदान उपलब्ध कराकर आयकर के भुगतान में छूट पाती हैं।

उपरोक्त अनुदानों के अतिरिक्त समाजसेवी लोगों के संयुक्त प्रयास से स्थापित और संचालित समाजसेवी संस्थाओं के माध्यम से ग्राम विकास की प्रक्रिया में गोबर गैस (बायोगैस) संयंत्र स्थापना एवं संचलन में अनेक ग्रामीण युवकों को प्रशिक्षण देकर रोजगार उपलब्ध कराया जाना संभव है।

समाजसेवी संस्थाओं के द्वारा बायोगैस संयंत्र की स्थापना और संचालन के लिए बेरोजगार ग्रामीण युवकों को प्रशिक्षण देकर अलग-अलग कामों में लगाया जा सकता है विवरण इस प्रकार है–

(1) *संयंत्र स्थापना प्रचारकः* इस श्रेणी के कार्यकर्ताओं को ग्रामीणों के मध्य जाकर बायोगैस संयंत्र स्थापना के लिए उन्हें तैयार करने की जिम्मेदारी दी जाती है। न्यूनतम हाईस्कूल उत्तीर्ण इन प्रचारक कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण देकर (क) बायोगैस संयंत्र की तकनीक, (ख) आर्थिक लाभ, (ग) ग्राम विकास, (घ) गैस से मिलने वाले समस्त लाभ, (ड़) जैविक खाद निर्माण, (च) कृषि सुधार के साथ ही बायोगैस संस्थापन के लिए बैंक से मिलने वाले ऋण और समय-समय पर उसमें मिलने वाली छूटों की जानकारी और साहित्य के माध्यम से लैस कर दिया जाता है। ग्रामीणजनों को बायोगैस संयंत्र स्थापना के लिए राजी करने के बाद प्रचारक कार्यकर्ता की यह जिम्मेदारी होती है कि वह इस बात की भी जानकारी प्राप्त कर ले कि अपने यहां बायोगैस संयंत्र स्थापित करवाने वाले व्यक्ति को नियमित कितनी मात्रा में बायोगैस की आवश्यकता होगी, उसके पास कितने पशु हैं, बायोगैस निर्माण के लिए कच्चे माल के रूप में उसके पास क्या-क्या मिलेगा, जलकुंभी, मानव मल आदि के उपयोग की कितनी संभावना है। प्रचारक कर्यकर्ता उक्त तथ्यों के विषय में रिपोर्ट तैयार करने की स्पष्ट योग्यता प्रशिक्षण के द्वारा पैदा किया जाना चाहिए।

(2) *तकनीकी कार्यकर्ताः* प्रचारक कार्यकर्ता के द्वारा उपभोक्ता को बायोगैस संयंत्र की स्थापना के लिए राजी करने के बाद स्थिति की रिपोर्ट प्रस्तुत की जाएगी। तदुपरांत तकनीकी कार्यकर्ता द्वारा रिपोर्ट तथा स्थलीय निरीक्षण तथा प्रचारक कार्यकर्ता और उपभोक्ता से विचार विमर्श के बाद तय करना होगा कि उपभोक्ता के पास उपलब्ध कौन-सा स्थान संयंत्र के लिए सभी दृष्टियों से उपयुक्त होगा। इसके लिए निम्न बिंदुओं पर ध्यान दिया जाना आवश्यक होता हैः (क) उपभोक्ता को प्राप्त होने वाले गैस से क्या-क्या काम लेना है, (ख) संयंत्र स्थापना के लिए कौन-सा स्थान उपयुक्त होगा, जहां से गोबर प्राप्ति स्थल दूर न हो, बरसात में संयंत्र में गोबर ले जाने में असुविधा न हो, (ग) वर्षा में गैस संयंत्र और उसके आस-पास का क्षेत्र पानी में डूब न जाए, और गर्मी में पानी आसानी से मिल जाए, (घ) उपभोक्ता को कितनी गैस की नियमित जरूरत होगी, (ङ) स्लरी से खाद कहां बनेगी, (च) रसोई तक गैस पहुंचाने की व्यवस्था कैसी होगी, उपभोक्ता सभी तथ्यों पर व्यापक रूप से जांच पड़ताल करने के बाद तकनीकी कार्यकर्ता प्रचारक कार्यकर्त्ता और उपभोक्ता से विचार-विमर्श के बाद एक योजना बनाकर इस बात की संस्तुति करता है कि (क) बायोगैस संयंत्र कौन-सी जमीन पर स्थापित हो, (ख) उसका आकार-प्रकार कैसा होगा, (ग) मॉडल कौन-सा होगा। (घ) स्थापना में कौन-सा सामान कितना लगेगा, (ङ) कितना खर्च आयेगा, (च) कितनी मात्रा में गैस और खाद सुलभ होगी, आदि।

तकनीकी कार्यकर्ता के लिए गणित के साथ बी.एस-सी. या सिविल इंजिनीयरिंग का डिप्लोमा या संबे अनुभव वाले कुशल अनुभवी व्यक्ति को लगाया जाना चाहिए।

(3) *संस्थापन कार्यकर्ताः* बायोगैस संयंत्रों की स्थापना में अशिक्षित और अल्पशिक्षित ग्रामीण युवकों के लिए कुशल और अकुशल श्रमिक के रूप में रोजगार प्राप्ति की अच्छी संभावना होती है। इसके लिए गांव के ही ग्राम विकास में रुचि रखने वाले बेकार, अल्पशिक्षित और अशिक्षित

युवकों को अल्पकालिक प्रशिक्षण द्वारा तैयार किया जा सकता है।

बायोगैस संयंत्र की स्थापना के बाद उसके उत्पादों के बेहतर और लाभकारी उपयोग के विषय में ग्रामीणों को जानकारी प्रदान करने के लिए समाजसेवी संस्थाओं (एन.जी.ओ.) की ओर से कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण देकर इस बात के लिए तैयार किया जाना चाहिए कि वे जाकर (क) स्थापित संयंत्र से निकलने वाली स्लरी (कर्दम) से उच्च श्रेणी की जैविक खादों के निर्माण के तौर-तरीके सिखा सकें ताकि ग्रामीण रासायनिक खादों की जगह जैविक खादों का प्रयाग कर अपनी खेती की जरूरतों की खाद के लिए वह अपने ही साधनों पर निर्भर हो सकें, (ख) ग्रामीण उत्पादित बायोगैस का प्रयोग रोशनी और रसोई के अलावा इंजन चलाकर कुएं से पानी निकालकर जल संबंधी जरूरत पूरी कर सकें, (ग) उत्पादित गैस का बिजली पैदा करने के काम में प्रयोग कर सकें। इन समस्त कार्यों की जानकारी के लिए क्षेत्रीय ग्रामीण बेरोजगार युवकों को ही प्रशिक्षण देकर तैयार किया जाना चाहिए।

सामुदायिक संयत्रों से रोजगारः

उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त ग्रामीणों के द्वारा संयुक्त रूप से स्थापित सामुदायिक गैस संयत्रों के संचालन एवं अलग-अलग कामों के लिए भी अनेक ग्रामीणों को पूर्णकालिक रोजगार की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार बायोगैस के विभिन्न पक्षों के विशेष उपयोगिताओं को देखते हुए यह स्पष्ट है कि आज के परिवेश में गांवों के लिए गोबर गैस संयंत्र ग्रामीण ऊर्जा, विकास और रोजगार के सशक्त साधन हैं। •

5

महासागर खोज-अभियान

राधाकांत भारती *

वायु के समान जल भी मानव-जीवन के लिए अनिवार्य रहा है। सच तो यह है कि सबसे पहले जो बस्तियां बसीं, वे बड़ी नदियों के तटों पर ही थी। मानव सभ्यता सबसे पहले दजला (टिग्रिस), फुरात (यूफ्रीटीज), नील और सिंधु नदी के तटों पर ही विकसित हुई थी। लेकिन नदी-तटों पर रहने वाले मानवों ने शीघ्र ही समुद्रों की विशालता का ज्ञान प्राप्त कर लिया, क्योंकि भूमि पर बहने वाली नदियां और नाले अंततोगत्वा समुद्रों और महासागरों में ही जाकर मिल जाते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि समुद्र तटों पर भी मानव सभ्यता ने अपने पैर जमाए। विशेष रूप से उष्ण कटिबंध और उसके आसपास के क्षेत्रों में मानव-सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ। दक्षिण भारत के तटों पर हजारों वर्ष पहले बस्तियां बस गई थी। सारे पूर्वी और पश्चिमी समुद्र तटों पर सभ्य और शांतिप्रिय मानव ने अपनी बस्तियां बसा ली थी। इनमें रहने वाले लोग पड़ोसी देशों के साथ व्यापार करते थे। इसका प्रमाण तमिल के प्रारंभिक साहित्य में मिलता है। सारे दक्षिण भारत में जो प्राचीन स्मारक फैले हुए हैं, उनसे भी पता चलता है कि समुद्र के रास्ते दूसरे देशों से व्यापार कितना व्यापक था।

जो लोग समुद्र तट के समीप रहते हैं और समुद्र से परिचित हैं उन्हें पता है कि वह क्या होता है। लेकिन जो समुद्र से दूर रहते हैं, उन्हें समुद्रों के आकार और महत्व का प्रायः कोई ज्ञान नहीं होता, उन्हें यह जानकर तनिक अचंभा हो सकता है कि पृथ्वी के लगभग तीन चौथाई भाग पर महासागर है, भूमि तो पृथ्वी का कुल एक चौथाई भाग है। अंतरिक्ष यात्रियों ने अंतरिक्ष में यात्रा करते हुए पृथ्वी को देखा है और इस बात की पुष्टि की है। उन्होंने यह कहा है कि पृथ्वी तो पानी से भरा ग्रह है। अंतरिक्ष में उड़ान के समय अंतरिक्ष यात्रियों को पर्वतों ऊंचाइयां उतनी नही दिखीं जितनी कि सहासागरों के नीचे जल की चमक, जो दूर-दूर तक फैली हुई थी। जल ही के समय में मानव ने समुद्र के महत्व को समझा है।

समुद्रों का मानव-जीवन के लिए बड़ा महत्व है। सच तो यह है कि समुद्रों का प्रभाव जीवन के प्रत्येक पहलू पर पड़ता है। पृथ्वी पर जलवायु कैसी होगी उसके नियामक समुद्र ही हैं। पृथ्वी पर होने वाली सारी वर्षा और उस पर चलने वाली हवाएं उन समुद्रों से ही उत्पन्न होती हैं, जो चारों ओर फैले हुए हैं। समुद्रों से केवल मछली ही नहीं मिलती, और भी बहुत-सी वस्तुएं प्राप्त होती है। हाल के कुछ समय में तेल, प्राकृतिक गैस, कोयला और कई अन्य खनिज पदार्थ समुद्र तल से निकाले जाने लगे हैं। समुद्र माल को एक देश से दूसरे देश ले जाने का माध्यम भी हैं। इसमें संदेह नहीं कि विमान बहुत अधिक संख्या में चलने लगे हैं, फिर भी खाद्य पदार्थों, कच्चे माल और निर्मित वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने में समुद्री जहाजों की भूमिका अपार है। देशों की जानकारी और उन पर विजय प्राप्त करने में भी समुद्रों की भूमिका सर्वविदित है। सच तो यह है कि समुद्री यात्रा की व्यवस्था होने के बाद ही कई नए देशों की खोज संभव हो सकी और एक नई विश्व सभ्यता ने जन्म लिया। प्रतिरक्षा के क्षेत्र में भी समुद्र महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गए हैं। दूसरे विश्वयुद्ध में मित्र देशों की नौसेनाओं की शक्ति ने ही उन्हें अंततोगत्वा विजयी बनाया।

* 56 नगिन लेक अपार्टमेंटस, पीरागढ़ी नई दिल्ली 110087

समुद्र करोड़ों नर-नारियों के लिए आनंद और आमोद-प्रमोद का भी श्रेष्ठ साधन है। लोग हजारों मील यात्रा करके और कष्ट सहकर समुद्र तट पर पहुंचते हैं जिससे कि वे एक सप्ताह या एक महीना वहां रह कर आराम कर सकें।

प्रारंभिक प्रयत्न

मानव ने समुद्र पर विजय पाने के पहले जो प्रयत्न किए वे केवल नाम मात्र के थे। लेकिन उस समय मानव का ज्ञान सीमित था तथा उसके पास उपकरण भी मामूली किस्म के थे और इसलिए उसे अपनी उपलब्धि बहुत बड़ी लगी होगी। प्रारंभिक युग के मानव के लिए ताजे फलों और कंद मूल की तलाश में लकड़ी के लट्ठे पर बैठ कर किसी पास के द्वीप तक पहुंचना बहुत बड़ा साहसिक कार्य लगा होगा। और जब उनमें से कुछ लोग किसी द्वीप पर जाकर स्थायी रूप से बस जाते थे तो यह और भी बड़ा साहसिक कार्य माना जाता होगा। मछलियों और दूसरे जीवों को पकड़ने के लिए काटों, रस्सियों और जालों के आविष्कार और उनके प्रयोग को समुद्र पर विजय के अभियान में बहुत बड़ा काम माना जा सकता है। जंगलों में पशुओं का शिकार करने की तुलना में समुद्र में मछली पकड़ने में बहुत कम खतरा था और लाभ अपेक्षाकृत अधिक। भीतरी प्रदेशों में, जहां जंगलों में हिंसक पशुओं का बाहुल्य था, रहने की बजाय समुद्र तट पर रहना अधिक निरापद और सुखकर था। मानव ने शीघ्र ही नियमित रूप से मछली पकड़ने और समुद्र संबंधी अन्य व्यवसायों को अपनाने की आदत डाल ली। इससे भी अधिक महत्व इस बात का था कि उसने समुद्री यात्रा करके खाद्य पदार्थों और धंन संपत्ति की खोज में दूसरे देशों तक पहुंचना सीख लिया।

पाल वाले जहाजों के आविष्कार के साथ ही मानव का क्षितिज और भी व्यापक हो गया। अब वह अपने देश सेही बंधा हुआ नही था। वह नए देशों की खोज कर सकता था और अधिक व्यापक क्षेत्र पर अपना वर्चस्व स्थापित कर सकता था। नार्वे के सुप्रसिद्ध खोजी और नाविक थोर हायड्ल ने कहा है कि मानव-समूह समुद्र के रास्ते एक स्थान छोड़ कर दूसरे में जाकर बसने लगे और कई बार वे दक्षिणी प्रशांत महासागर के द्वीपों और दक्षिणी अमेरीका के बीच यात्राएं करते थे। उन्होंने जो साक्ष्य इकट्ठा किया है उसके आधार पर इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया है कि दक्षिणी प्रशांत महासागर के द्वीपों के वासी शुरू में दक्षिणी अफ्रीका के पश्चिमी तटों से देसी नावों में बेठकर इतनी दूर आए थे।

इसी प्रकार प्रचीन काल में भारत से तमिल और उत्कल निवासी हिंद महासागर में जलयानों द्वारा हिंदेशिया के टापुओं पर पहुंचे थे। बाद में अरबों ने मिस्रियों के समान ही समुद्री यात्राएं की। वे लोग व्यापार के लिए समुद्री रास्तों से दूर-दूर तक गए। उन्होनें अरब सागर और दक्षिणी पश्चिमी प्रशांत महासागर में यात्रा करना सीख लिया। इसके अतिरिक्त वे भूमध्य सागर और दक्षिणी-पूर्वी अटलांटिक महासागर में भी गए। अरब पहले लोग थे, जिन्होंने विश्वभर में व्यापार के लिए समुद्री रास्तों को नियमित रूप से अपनाया। वे लोग भारत और दक्षिणी-पूर्वी एशिया के मसाले और इमारती लकड़ी लेकर पहले तो अपने पूर्वी तट पर पहुंचते थे और वहां से भूमि के रास्ते यह समान यूनान और यूरोप के देशों तक पहुंचाते थे। विभिन्न महाद्वीपों के बीच व्यापार पर अरबों का एकाधिकार-सा स्थापित हो गया था। समुद्र और भूमि के रास्ते परिवहन पर भी अरब ही छाए हुए थे।

अरबों को हिंद महासागर, अरब सागर, दक्षिणी चीन सागर और भूमध्य सागर के आस-पास के देशों के बीच समुद्री रास्तों का पूरा ज्ञान था। सच तो यह है कि जब वास्को डी गामा अप्रैल 1498 में दक्षिणी अफ्रीका के दक्षिणी छोर पर गुड होप अंतरीप पर मुड़ा, तो उसने एक अरब नाविक अहमद इब्न माजिद की सहायता मांगी। उसने उससे कहा कि वह हिंद महासागर और अरब सागर से होकर भारत में मालाबार के तट तक पहुंचने में उसकी सहायता करें। भारत के साथ उन दिनों अरबों के मैत्रीपूर्ण संबंध थे लेकिन अरब नाविक और व्यापारी की भूमिका ही पसंद करते थे। उन्होंने अपनी नाविक शक्ति का प्रयोग करके दूसरे देशों पर विजय पाने के लिए नही किया जैसे कि बाद में यूरोप के लोगों ने किया। इस स्वस्थ दृष्टिकोण के कारण

अरब विभिन्न राष्ट्रों के बीच, जो समुद्र के कारण एक-दूसरे से अलग-थलग थे, व्यापार के विकास में बहुत अधिक योगदान दे सके। सच तो यह है कि इसी दृष्टिकोण के कारण अरबों ने हिंद महासागर को अलगाव पैदा करने वाले समुद्र की बजाए एक ऐसी झील बना दिया जो विभिन्न राष्ट्रों को आपस में जोड़ती है।

समुद्रविज्ञान में भी अरबों ने बहुत प्रगति की थी। उन्होने समुद्र की धाराओं, हवाओं, वर्षा और अन्य विशेषताओं का पर्यवेक्षण किया और उनके बारे में जानकारी को लिखित रूप दिया। उन्होंने विभिन्न तटों और द्वीपों के मानचित्र भी बनाए और इस बात का विवरण भी दिया कि किन समुद्री रास्तों से उन्होंने यात्रा की है, उनमें कैसे उतार-चढ़ाव आते हैं। मानसून का सबसे पहला पर्यवेक्षण और लिखित विवरण अरबों ने ही तैयार किया। सच तो यह है कि मानसून शब्द अरबी के शब्द मौसम से ही बना है।

गौतम बुद्ध के अवतरण के बाद भारतीयों में समुद्री यात्रा और खोज का प्रेम जाग उठा। बुद्ध ने एक सार्वभौम धर्म का उपदेश दिया। उनके उत्साही अनुयायी यह चाहते थे कि बुद्ध का संदेश हर उस राष्ट्र तक पहुंच सके जहां वे जा सकते थे। परिणाम यह हुआ कि बौद्ध भिक्षु भारत के सभी मार्गों से बड़ी संख्या में श्रीलंका, बर्मा, थाईलैंड, मलयेशिया और इंडोनेशिया सहित दक्षिणी-पूर्वी एशिया के सभी देशों तक जा पहुंचे। इस कारण न केवल बौद्ध धर्म इन देशों में बड़ी तेजी से फैला बल्कि भारत के उद्यमी राजाओं ने हिंद महासागर के दूसरे छोर पर बसे देशों तक अपना साम्राज्य फैला दिया। बाद में इनमें से कुछ साम्राज्य स्वतंत्र हो गए और कई शताब्दियों तक बने रहे। प्रसिद्ध इतिहासकार और कूटनीतिज्ञ श्री. के.एम. पणिक्कर ने लिखा कि समुद्र की इस खोज और साम्राज्यों के प्रसार का युग हमारे देश के इतिहास में एक स्वर्णिम शानदार युग था।

एक और महान जाति जिसने समुद्र पर मानव की विजय को स्थायी रूप दिया, उत्तरी यूरोप की वाइकिंग जाति थी। इस जाति का प्रादुर्भाव नवीं शताब्दी में हुआ। वाइकिंग स्कैंडीनेविया (नार्वे और स्वीडन) से उत्तर की ओर चले तो उन्हेंने अटलांटिक महासागर के तट पर पहुंच कर दम लिया। वाइकिंग लगभग एक हजार ईसवी में उत्तरी अमेरिका के पूर्वी तट पर बसे न्यू फाउंडलैंड तक भी पहुंचे। लेकिन उन्होंने अरबों के समान बस्तियां नहीं बनाई और न ही अपने उपनिवेश स्थापित किए, जैसा कि पश्चिम यूरोप के लोगों ने बाद में किया। इसके बावजूद समुद्र पर विजय में और उसके ज्ञान की दृष्टि से वाइकिंग जाति का योगदान बहुत अधिक था। वे नार्वे, स्वीडन और फिनलैंड समुद्र भ्रमण के लिए प्रसिद्ध हैं और समुद्रविज्ञान में उनका योगदान किसी अन्य जाति या समूह से कम नही है।

भूमध्य सागर में भी एशिया और उत्तरी अफ्रीका के लोग और सीरिया के निवासी थे जिन्होंने औरों को समुद्र की खोज का रास्ता दिखाया। पंद्रहवीं शताब्दी के अंत तक जब पश्चिमी यूरोप के लोग भी समुद्र की खोज के क्षेत्र में आगे आए, समुद्र के बारे में अधिकांश मूलभूत ज्ञान प्राप्त हो चुका था। यूरोप के खोजियों ने बड़े साहस और हिम्मत का परिचय दिया और उस समय समुद्र के बारे में जो ज्ञान उपलब्ध था उसका प्रयोग करके न केवल संसार भर के समुद्रों के बारे में ज्ञान का भंडार बढ़ाने में योगदान दिया, बल्कि एशिया और अफ्रीका के साम्राज्यों की जानकारी भी प्राप्त की जहां उन्होंने समुद्र के रास्ते पहुंच कर अपने उपनिवेश स्थापित कर लिए।

हिंद महासागर

दूसरे विश्व युद्ध के बाद इस बात को समझ लिया गया कि यदि सभी राष्ट्र आपस में सहयोग करें तो समुद्र के अनुसंधान में अधिक लाभ हो सकता है। विश्व भर में महासागरों के बारे में जानकारी इकट्ठी करने का एक और प्रयत्न किया गया। अंतर्राष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष (1957-58) में विश्व भर के समुद्रविज्ञानी इकट्ठे हो गए और उन्होंने अटलांटिक महासागर का ब्योरेवार सर्वेक्षण करने का निर्णय लिया। सन् 1957 में एक ब्रिटिश और तीन अमरीकी जहाज दक्षिण से उत्तर तक और फिर वापसी यात्रा करने लगे। अपने सर्वेक्षण के दौरान दोनों ने जहाजों ने कई बार अटलांटिक महासागर को पार किया और कई केंद्रों

तक गए। उधर रूस के भी बड़े-बड़े जहाज विटिआज और आकदेमिक कुर्चातोव अनुसंधान कार्य पर निकल पड़े। यूरोप के अन्य राष्ट्रों ने भी अंतर्राष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष में सक्रिय भाग लिया। इस मिले-जुले प्रयत्न का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह था कि अटलांटिक महासागर का पहलां व्यापक मानचित्र (ऐटलस) तैयार किया गया।

विश्व के सभी राष्ट्रों ने मिलकर, परस्पर सहयोग से अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान भी आरंभ किया। इसका गठन यूनेस्को और अंतर्राष्ट्रीय समुद्रविज्ञान आयोग ने मिल कर किया था। अटलांटिक और प्रशांत महासागर के विपरीत (जहां से होकर उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव तक पहुंचा जा सकता है) हिंद महासागर के चारों ओर भूमि ही भूमि है। हिंद महासागर से दक्षिणी ध्रुव तक तो पहुंचा जा सकता है, लेकिन और कहीं नहीं। परिणामस्वरूप हिंद महासागर के बारे में ज्ञान के भंडार में बहुत वृद्धि हुई है। इस अंतर्राष्ट्रीय अभियान में भारत समेत बीस राष्ट्रों ने भाग लिया। इसमें 38 जहाज और बहुत-से अनुसंधानकर्ता थे। यह कार्यक्रम 1961 से 1965 तक चला। भारत के वैज्ञानिकों ने इस अभियान में सितंबर, 1962 से दिसंबर, 1965 तक काम किया।

भारतीय अनुसंधानकर्ताओं के दल में देश के विभिन्न विश्वविद्यालय और अनुसंधान संस्थाओं के विद्वान थे। इनके कार्यकलापों का मार्ग-दर्शन करने वाली संस्था थी भारत की समुद्र अनुसंधान संबंधी राष्ट्रीय समिति। इस अभियान के लिए भारत के चार अनुसंधान जहाजों की व्यवस्था की गई। इनमें सबसे बड़ा जहाज **आइ.एन.एस. किस्तना**, भारतीय नौसेना का 90 मीटर लंबा युद्धपोत था, जिसमें समुद्र संबंधी अनुसंधान के उपकरण लगाए गए थे। इसके अतिरिक्त **आर.वी. वरुण** था जो भारत-नार्वे परियोजना का था और अब समेकित मत्स्यपालन परियोजना कोचिन का है। एक और जहाज **आर.वी. कोच्चि** था जो केरल विश्वविद्यालय का था। इसके अतिरिक्त भारत सरकार के खाद्य तथा कृषि मंत्रालय का जहाज **एफ.वी. बंगा** था। ये सारे जहाज किस्तना की तुलना में छोटे थे, लेकिन इनमें समुद्र-संबंधी अनुसंधान के सारे उपकरण लगे हुए थे। लेखक को अंतर्राष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान में सक्रिय भाग लेने का मौका मिला और वह किस्तना और कोच्चि में कई बार यात्रा कर चुका है।

भारतीय दल ने समेकित और सर्वव्यापी अनुसंधान कार्यक्रम चलाया, जिसके अंतर्गत न केवल समुद्र विज्ञान के सभी पहलुओं की खोज की गई बल्कि मौसम का भी व्यापक अध्ययन किया गया। इस अंतर्राष्ट्रीय अभियान में भाग लेकर भारत ने बहुत लाभ उठाया। भारत अब इस योग्य हुआ है कि उसने पणजी, गोवा में समुद्र विज्ञान की राष्ट्रीय संस्था की स्थापना की है। इस अभियान का एक लाभ यह भी हुआ कि भारत में प्रशिक्षित समुद्रवैज्ञानिकों का एक दल तैयार हो गया। राष्ट्रीय समुद्रविज्ञान संस्थान जनवरी, 1966 में वैज्ञानिक तथा औद्योगिकी अनुसंधान परिषद् के अंतर्गत प्रारंभ किया गया। उसके बाद से इस संस्था का विस्तार किया गया है और अब इसके सात विभाग हैं – भौतिक समुद्रविज्ञान, रासायनिक समुद्रविज्ञान, जैविक समुद्रविज्ञान, भू-भौतिकी और भू-भौतिकीय समुद्रविज्ञान, समुद्र उपकरण विभाग, महासागर इंजीनियरी और आयोजन तथा सूचना विभाग।

यहां पर भारत में समुद्र अनुसंधान के इतिहास की रूपरेखा देना उचित होगा। सन् 1871 में कलकत्ता के भारतीय संग्रहालय के एक अधिकारी, डाक्टर जे. वुड मेसन को अंडमान द्वीप-समूह भेजा गया जिससे कि वे उस क्षेत्र के पशु-पक्षियों और वनस्पति आदि का अध्ययन कर सकें। ब्रिटिश काल में भारतीय समुद्र में अनुसंधान का यह पहला उदाहरण है। सन् 1872 में भारतीय समुद्र सर्वेक्षण नामक संगठन बनाया गया जिसका प्रधान कार्यालय कोलकाता में था। यह याद रखना चाहिए कि महान चैलेंजर अभियान, जिसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं, इसी काल में संगठित किया गया था। सन् 1881 में 580 टन का एक सर्वेक्षण जहाज **आर.आइ.एम.एस. इन्वेस्टीगेटर** भारतीय समुद्र सर्वेक्षण को दिया गया। सन् 1908 में इसके स्थान पर इसी नाम का एक और जहाज दिया गया जिसका वजन 1078 टन था और रफ्तार इससे कहीं अधिक थीं। सन् 1910 में कर्नल आर.बी.एस. सेवेल (सर्जन नैचुरेलिस्ट) के पद पर नियुक्त किए गए। उन्हीं के परिणामस्वरूप भारत में समुद्रविज्ञान की नींव पड़ी। इसी कारण कर्नल सेवेल को भारतीय समुद्रविज्ञान का जनक कहा जा सकता है। सेवेल ने जो जानकारी इकट्ठी की वही आज भी भारत के आस-पास के समुद्रों में जीवविज्ञान, रसायनशास्त्र, भौतिकी और मौसम विज्ञान संबंधी जानकारी का आधार है।

बाद में कई अभियान दल भेजे गए हैं जैसे कि 1928 से 1930 तक **डाना अभियान दल,** 1933 का **जौन मरे** अभियान दल। इन दलों के जहाजों ने हिंद महासागर में कई बार यात्रा की और समुद्र के संबंध में बहुत-सी जानकारी इकट्ठी की।

हाल ही में भारत सरकार ने प्रधानमंत्री के प्रत्यक्ष नियंत्रण के अंतर्गत समुद्र विकास विभाग की स्थापना की है। यह विभाग देश में समुद्रविज्ञान संबंधी अनुसंधान कार्यक्रमों में लगे संगठनों के काम में तालमेल रखेगा और साथ ही समुद्री संसाधनों के आधार पर विकास के कार्यक्रमों के लिए मार्गदर्शन करेगा।

इस प्रकार अब देश समुद्रविज्ञान के क्षेत्र में प्रगति के पथ पर अग्रसर है।

विज्ञान समाचार

जुकाम के वायरस से होगा दिल का इलाज

बच्चों में सर्दी-जुकाम का कारक 'एडिनो वायरस' दिल के रोगियों के लिए वरदान बनेगा। धमनियों में जमे रक्त व वसा को हटाने के लिए बाइपास सर्जरी की जरूरत नहीं पड़ेगी।

इस वायरस के जरिए बारीक नसों व धमनियों में ऐसी दवाएं पहुंचाई जाएंगी जिससे रक्त के थक्के कम हो जाएं। एडिनो वायरस को दवाओं के बेहतर वाहक के रूप में पहचाना गया है। इस वायरस में रक्त व लिपिड की क्षति-ग्रस्त कोशिकाओं को खत्म करने की अभूतपूर्व क्षमता देखी जा रही है। कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय व सी.डी आर.आई. के वैज्ञानिक मिलकर ऐंटी थ्रॉम्बॉटिक व ऐंटी-ऑस्टियोपोरोसिस दवाओं पर परीक्षण करने की तैयारी कर रहे हैं। कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के इस शोध को अमेरिकी पेटेंट भी हासिल हो चुका है। यह तकनीक जीन थेरेपी पर आधारित है। वायरस पर शोध पूरा हो चुका है। वैज्ञानिकों ने एडिनो वायरस के हानिकारक जीन को अलग कर दिया गया है। वायरस की रिप्लीकेशन यानी विभाजन की क्षमता भी नष्ट कर दी गई है। सिर्फ फायदा करने वाले जीन ही इस वायरस में मौजूद हैं। लाभकारी जीन के साथ ऐंटी थ्रॉम्बोटिक यानी रक्त के थक्के को कम करने वाली दवाओं के मॉलिक्यूल को एंजियोप्लास्टी के जरिए रुद्ध धमनियों तक पहुंचाया जा सकता है। इससे रक्त के थक्के नहीं बनेंगे। वैसे इस वायरस को मांसपेशियों में इंजेक्शन से भी प्रभावित कोशिकाओं तक भेजा जा सकता है। डीप वेन थ्रॉम्बोसिस (डी वि टी), आर्थराइटिस व ऑस्टियोपोरोसिस में मांसपेशियों में इंजेक्शन काफी कारगर हैं।

वैज्ञानिकों का कहना है कि एडिनो वायरस मैक्रोफेज कोशिकाओं की तरह काम करता है, यानी रक्त व लिपिड जमी खराब कोशिकाओं को खा लेता है। साथ ही दवाएं सही जगह पर पहुंचती हैं। उनका कहना है कि इससे फॉलिज के दौरान मस्तिष्क को खून पहुंचाने वाली कैरोटिड धमनियों के जमे रक्त को भी कम करने में मदद मिलेगी। इससे कुछ ही समय में रक्त प्रवाह सामान्य हो सकता है। इस तकनीक पर चूहों में सफल परीक्षण किया जा चुका है।

6

औषधीय गुणों से भरपूर-पिप्पली

मधुज्योत्सना *

भारतीय उपमहाद्वीप के अनेक देशों में बहुतायत से पैदा होने वाली पिप्पली का गरम मसालों, औद्योगिक उत्पादों और औषधियों के निर्माण में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। इसका फल सर्दी, जुकाम, खांसी, सिर-दर्द, सांस की तकलीफों, आंख, नाक, कान, गले की गड़बड़ी, पेट में बदहजमी गैस की बीमारियों की खास औषधि है। पिप्पली के फलों, पत्तियों और जड़ों में प्रतिजैविक (एन्टीबायोटिक) गुण पाए जाते हैं। इसका फल उपापचयी (एनाबॉलिक) गुणों से युक्त होता है। अंडमान द्वीप समूह के लोग इसकी पत्तियों का इस्तेमाल पान की पत्तियों की तरह करते हैं।

पिप्पली का पौधा गंध युक्त और लता की तरह फैलने वाला होता है। यह किसी पेड़ या जमीन से ऊंचाई पर चढ़कर फैलता है। इसकी पत्तियां देखने में पान-जैसी तथा गाढ़े हरे रंग की होती हैं। इसकी पत्तियों की लंबाई 5 से 7 सेमी. तक होती है। वर्षा ऋतु में इसमें फल लग जाते हैं, जो शुरू में हल्के पीले और पक कर तैयार होने पर धूसर कत्थई रंग के हो जाते हैं। पिप्पली देखने में शहतूत-जैसी होती है जिस पर छोटे-छोटे गोल दाने उभरे होते हैं।

पिप्पली के फल में पाए जाने वाले रासायनिक तत्व :

इसके सूखे फल में पिपलार्टिन नामक एल्केलॉइड पाया जाता है। इसके अलावा इसमें सिसेमिन और पिपलास्टीरॉन नामक तत्व भी पाया जाता है। पिप्पली की जड़ों में पाइरिन 0.15 से 0.18 प्रतिशत तक पाया जाता है। पिपलार्टिन 0.13 से 0.20 प्रतिशत तथा पाइपर लौगूमाइन 0.02 प्रतिशत तक पाए जाते हैं। इसकी जड़ों में अदरक और काली मिर्च की सुगंध से युक्त 0.7 प्रतिशत तेल पाया जाता है।

रोगोपचार में पिप्पली :

(1) दमा और श्वसनी शोथ (ब्रोंकाइटिस) में- भारतीय चिकित्साविज्ञानी धानुकर और उनकी टीम ने 1984 में अपने शोध में पाया कि पिप्पली का सेवन दमा और श्वसनीशोथ से मुक्ति पाने के लिए उपयोगी औषधि है। चिकित्सक दमा और श्वसनशोथ -जैसे रोगों के उपचार में पिप्पली, काली मिर्च और सोंठ की बराबर-बराबर मात्रा के चूर्ण को दिन में तीन बार शहद या उष्ण जल से लेने की सलाह देते हैं।

(2) खांसी, गले में खराश : श्वासकष्ट तथा हिचकी के निवारण के लिए आधा चम्मच पिप्पली चूर्ण और उतना ही सेंधा नमक एक प्याली गरम पानी में घोल कर छान लें और गर्म हालत में ही इसे पी लें।

(3) पेट की गैस और मूर्छा रोग में : आधा चम्मच पिप्पली चूर्ण को गाय के एक गिलास गर्म दूध के साथ नियमित रूप लेने से लाभ होता है।

(4) यौन दुर्बलता एवं शारीरिक थकावट में : पिप्पली और हरड के आधा-आधा चम्मच चूर्ण को एक साथ लेकर शहद के साथ मिलाकर सुबह शाम दोनों समय दो माह तक सेवन करना चाहिए।

(5) दस्त में : पिप्पली का आधा चम्मच चूर्ण गर्म पानी से लेना चाहिए।

(6) शरीर की क्षतिग्रस्त कोशिकाओं के पुनर्निर्माण में : इसमें पिप्पली की महत्वपूर्ण भूमिका पाई गई है। विशेषज्ञों की राय है कि प्रतिदिन पिप्पली का एक फल एक कप दूध के साथ लेने पर कोशिका निर्माण होता रहता है।

(7) हृदय रोग में : पिप्पली के प्रयोग से हृदय की रक्तवाहिनियों का विस्तार होता है। यह तथ्य 1968 में भारतीय वैज्ञानिकों के एक दल ने अपने शोध परिणमों के आधार पर बताया है। लब्धप्रतिष्ठ भारतीय वैज्ञानिक ए. शोज ने अपने शोध से इसे प्रमाणित किया है।

(8) उल्टी और हिचकी में : आधा चम्मच पिप्पली चूर्ण और मातुलुंग रस को शक्कर या शहद के साथ लेने से आराम मिलता है।

(9) गले के संक्रमण में - पिप्पली चूर्ण छह चम्मच मूलैठी बच तथा हरड़ में प्रत्येक का चूर्ण तीन-तीन चम्मच एक चम्मच इलायची चूर्ण सभी को अच्छी तरह मिलाकर हल्का-सा भून कर किसी चौड़े मुंह वाली बोतल में संगृहीत कर लें। इस मिश्रित चूर्ण की आधा चम्मच मात्रा चौथाई चम्मच शहद के साथ नियमित रूप से सुबह शाम सेवन करने से गले का संक्रमण दूर हो जाता है।

(10) इन्फ्लुएन्जा की शुरुआत में - आधा चम्मच पिप्पली चूर्ण आधा चम्मच अदरक का रस दो चम्मच शहद के साथ दिन में दो बार लेना लाभदायक है।

(10) उदर विकारों में - पिप्पली आयुर्वेद की अनुभूतऔषधि है। लवण भास्कर या पिप्पलादिचूर्ण नामक मशहूर औषधि का निर्माण पिप्पली के फल, जड़, धनिया, जीरा तथा सेंधा नमक के मिश्रण से होता है। यह उदर विकार की खास औषधि है।

*G-53/100, छोटी गैबी, लक्सा रोड, वाराणसी - 221010

विज्ञान समाचार

वृक्ष करते हैं दमा से बचाव

पेड़-पौधे न केवल धरती को हरा-भरा बनाकर उसे प्रदूषण से मुक्त करते हैं वरन् यह दमा को भी नियंत्रित करने का काम करते हैं । दमा पर कार्य कर रहे शोधकर्ताओं ने पाया कि जिन-जिन स्थानों पर पेड़-पौधों की संख्या अधिक है वहां के बच्चों में दमा के लक्षण कम पाए गए हैं। वहीं जिन स्थानों पर वनस्पतियों की संख्या कम है वहां के बच्चों में दमा के लक्षण ज्यादा हैं। शोध से प्रमाणित हुआ है कि प्रतिवर्ग किमी. 613 पेड़ या अधिक वाली जगहों में दमा से पीड़ित पाए गए बच्चों एवं 343 पेड़ प्रतिवर्ग किमी. या इससे कम वृक्षों वाले स्थानों में दमा पीड़ित बच्चों की संख्या में कई गुना का अंतर है। यह पहले ही प्रमाणित हो चुका है कि दमा का संबंध काफी हद तक प्रदूषण से है।•

7

अवसाद (डिप्रेशन) का बढ़ता कहर

- डॉ. जे.एल. अग्रवाल *

जीवन परिवर्तनशील है। जीवन में सुख-दुख आते-जाते रहते हैं। परिस्थितियों के अनुसार स्वभाव-व्यवहार में बदलाव होते रहते है। जब व्यक्ति लगातार दुखी, निराश, उत्साह हीन रहते हैं तो यह दशा अवसाद (डिप्रेशन) कही जाती है। ये व्यक्ति अपने परिवार समाज के लिए अनेक गंभीर समस्याएं उत्पन्न कर सकते हैं। अवसाद एक मनोरोग है। इसकी जानकारी मानव को गत 2 हजार वर्षों से है पर कुछ दशकों से इसके मरीजों की संख्या तेजी से बढ़ रही है और रोग लगभग महामारी का रूप ले चुका है। आपके आसपास अवसादों से ग्रस्त मरीज मिल जाएंगें। डिप्रेशन के कारण पारिवारिक, सामाजिक जीवन, कार्यक्षमता प्रभावित होती है। साथ ही इसके कारण विभिन्न शारीरिक, मानसिक रोगों के चंगुल में आने का खतरा बढ़ जाता है। अवसादग्रस्त मरीजों में आत्महत्या के विचार आ सकते हैं जिसे वह असफलता या सफलतापूर्वक अंजाम देने का प्रयास कर सकते हैं।

अनुमान है कि करीब 17 प्रतिशत व्यक्ति जीवन में कभी न कभी विभिन्न गंभीरता के अवसाद से ग्रस्त हो जाते हैं। अधिकांश को अवसाद बार-बार होता रहता है। वैसे तो अवसाद किसी भी आयु में हो सकता है, पर सबसे ज्यादा खतरा 40-50 आयु वर्ग में होता है। अब बच्चे, किशोर भी अवसाद का शिकार होने लगे हैं। युवावस्था में लड़के-लड़कियों में अवसाद लगभग बराबर होता है। पर उसके पश्चात् महिलाओं के अवसाद ग्रस्त होने की संभावना पुरुषों से दो गुना ज्यादा होती है। बीमार महिलाओं की तो अवसाद ग्रस्त होने की संभावना 6 गुना ज्यादा होती है। महिलाओं में विशिष्ट हॉर्मोन, समाजिक, आर्थिक परिस्थिति, असुरक्षा की भावना, गर्भावस्था, प्रसव, प्रसूतावस्था के दौरान तनाव इत्यादि के कारण अवसाद ज्यादा होता है।

अवसाद किन परिस्थितियों में ज्यादा होता है

- कुछ हद तक अवसाद वंशानुगत होता हैं, यदि माता पिता अवसाद ग्रस्त है तो संतानों के अवसाद ग्रस्त होने की प्रबल संभावना होती है।
- दीर्घकालीन या और असाध्य रोगों से ग्रस्त, अपंग व्यक्तियों के अवसाद ग्रस्त होने का खतरा ज्यादा होता है।
- लंबे समय तक शराब या और अन्य नशीले तत्वों का सेवन करने वालों को भी अवसाद-ग्रस्त होने का खतरा बढ़ जाता है।
- यदि परिवार का जीवन अशांत है, कलह होती है पति-पत्नी अलग रहते हैं, तलाक शुदा हैं, यदि जीवन साथी की मौत हो गई है तो भी अवसाद का खतरा ज्यादा रहता है।
- यदि घर, स्कूल, कार्य स्थल पर तिरस्कार/अनादर होता है, आत्मसम्मान को ठेस लगती है तो भी अवसाद ग्रस्त हो सकते हैं।
- जो व्यक्ति अकेले रहते हैं, जिनके दोस्त नहीं हैं, दूसरों से आत्मिक घनिष्ठ संबंध नही है, आवश्यकता होने पर घर परिवार वाले रिश्तेदार, सहयोगियों इत्यादि से सहायता की आशा नहीं होती तो वे भी असहाय महसूस करने के कारण अवसाद ग्रस्त हो सकते हैं।
- कुछ विपरीत परिस्थितियों, इच्छा पूर्ति न होने जीवन की जरूरते पूरी न होने पर दुख, निराश होना स्वाभाविक है। जब विपरीत परिस्थितियां सहनशीलता से ज्यादा होती हैं तो व्यक्ति डिप्रेशन की स्थिति में जा सकते हैं। इन व्यक्तियों में अवसाद के स्पष्ट कारण हो सकते है। पर ज्यादातर अवसाद के मरीजों में उनकी मनःस्थिति, अवसाद के स्पष्ट कारण ढूढ़े नहीं जा सकते हैं। यह आंतरिक अवसाद (इन्डोजिनस डिप्रेशन) कहलाता है।

* मेडिकल कालेज, कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश 17600

अवसाद के कारण उत्पन्न समस्याएं

इनका मन सदैव उदास रहता है, किसी भी कार्य में मन नहीं लगता, दुखी रहते हैं, इनको जीवन अंधकार-मय नजर आता है, उमंग, उत्साह नहीं रहता। किसी कार्य में भी खुशी महसूस नही होती। आसानी से रोने लगते हैं। स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। इनको भविष्य में भी आशा की कोई किरण नजर नहीं आती। विचार नकारात्मक ही होते हैं। कार्य में एकाग्रता नहीं रख पाते। मन में हीन भावना अपराध-बोध हो सकता है। इसके विचारों का प्रभाव इनके व्यक्तित्व तथा चेहरे पर भी परिलक्षित होता है। चेहरा दुखी, निस्तेज हो जाता है। ये निराश रहते हैं अकेले रहना पसंद करते हैं, किसी से मिलने, मित्रता करने की पहल नहीं करते। बिना कारण बेचैन रहते हैं चिंता करते हैं। अनेक अवसाद-ग्रस्त व्यक्तियों को जीवन, संसार व्यर्थ लगने लगता है। अवसाद-ग्रस्त मरीजों की आत्महत्या की धमकी को नजर अंदाज कतई नहीं करना चाहिए। इसके गंभीर दुःखद परिणाम हो सकते हैं।

निराशा, अकारण दुःख के कारण इनमें अनेक शारीरिक समस्याएं भी हो सकती हैं। इनको रात को या तो आराम दायक नींद नही आती या सुबह जल्दी खुल जाती है या बार-बार खुलती है, जबकि कुछ को ज्यादा नीद आती है। कुछ अवसादग्रस्त मरीजों की भूख कम हो जाती है, भोजन धीरे-धीरे और बेमन से करते हैं। कुछ अन्य को भूख ज्यादा लगने लगती है और बार-बार भोजन करने से वजन बढ़ने लगता है, मोटे हो सकते हैं। इनको लंबे समय तक बदन-दर्द, सरदर्द हो सकता है।

ये सामाजिक कार्यों, समारोहों में भागीदारी से कतराते है दूसरो से मित्रता करने में हिचकते हैं। कुछ अवसाद-ग्रस्त होने पर उद्विग्न, बैचैन रहते है। कुछ अवसाद-ग्रस्त मरीज बिना कारण हाथ हिलाते हैं या और बाल खीचते हैं।

अवसाद-ग्रस्त मरीज ढीले-ढाले बैठे रहते हैं। निगाह नीची रखते हैं, दूसरों से निगाह नहीं मिलाते हैं। यह बहुत हल्की आवाज से धीरे-धीरे बोलते हैं, प्रश्न का उत्तर हां या ना में या कुछ समय रुक कर देते है।

इनके विचार स्वयं, परिवार, समाज, देश के प्रति निराशावादी होते हैं। इनको भविष्य अंधकारमय नजर आता है। करीब आधे मरीजों की याददाश्त कम हो जाती है। इनके मन में स्वयं और अन्य लोगों के प्रति गलतफहमियां उत्पन्न हो सकती हैं। इनको स्वयं के गंभीर रोग ग्रस्त होने का भ्रम हो सकता है।

ये व्यक्ति दिनचर्या करने में भी कोताही करने लगते हैं। स्वयं की देखभाल, कपड़े बदलना, बाल संवारना, नहाने, सजने-संवरने के प्रति भी उदासीन हो जाते हैं।

अवसादग्रस्त पुरुषों का सेक्स के प्रति रुझान क्षमता कम हो सकती है। ये शीघ्रपतन या नपुंसकताग्रस्त हो सकते हैं। महिलाओं में ऋतुस्राव अनियमित हो सकता है, रक्तस्राव कम या ज्यादा हो सकता है। इनमें भी सेक्स में रुझान की कमी व अरुचि हो सकती है, उत्तेजना महसूस नही होती या चरमोत्कर्ष प्राप्त नहीं कर पातीं।

बच्चों में अवसाद : बच्चे भी डिप्रेशन का शिकार हो सकते हैं। बच्चे स्कूल जाने से डरते हैं, माता-पिता से चिपके रहते हैं, इनका पढ़ाई, खेल-कूद में मन नहीं लगता, गुमसुम रहते हैं। डर/अवसाद दूर करने के लिए ये बार-बार भोजन करते हैं जिससे ये मोटे हो सकते हैं।

युवाओं में अवसाद : युवा, किशोर यदि अवसाद ग्रस्त हो जाते हैं, तो अन्य समस्याओं के साथ ही इनमें नशीले पदार्थ के लती होने, असामाजिक, आपराधिक, कार्यों में लिप्त होने, घर से भागने, लड़ाई-झगड़ा करने सेक्स अपराध, बलात्कार करने, समलैंगिग संबंध स्थापित करने का खतरा भी होता है।

वृद्धों में अवसाद : वृद्धों में अवसाद अति सामान्य हैं। करीब 25 से 50 प्रतिशत 65 वर्ष आयु से ज्यादा व्यक्ति विभिन्न स्वरूपों के तथा विभिन्न गंभीरता के अवसाद से ग्रस्त होते हैं। जीवन-साथी की मृत्यु, विकलांगता, स्वयं की दीर्घकालीन लाइलाज बीमारी, आर्थिक कठिनाइयां, परनिर्भरता, पारिवारिक-सामाजिक अवहेलना, तिरस्कार इत्यादि कारणों से वृद्धों के अवसाद ग्रस्त होने की संभावना रहती है। ये भी आसानी से शराब या अन्य नशीले पदार्थों के लती हो सकते हैं। यदि किसी दार्घकालीन रोग से ग्रसित हो तो डिप्रेशन गंभीर हो जाता है।

क्यों होता है अवसाद

अवसाद जीवन की सामान्य परिस्थिति नहीं बल्कि मनोरोग है। मनोवैज्ञानिक के अनुसार गुणसूत्रों (गुणसूत्र नंबर11 और X) में बदलाव, जीवन के अनुभवों, परिस्थितियों और वातावरण में जटिल अंतःक्रिया के परिणामस्वरूप व्यक्ति अवसाद-ग्रसित हो सकते हैं। अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि अवसाद-ग्रसित मरीजों के मस्तिष्क में नारएड्रिनलीन (naradrenaline) और सिरोटोनिन (serotonin) रसायनों का स्राव कम हो जाता है। ये रसायन मस्तिष्क की कार्यशैली को संतुलित तथा सामान्य बनाए रखने के लिए आवश्यक होते हैं। साथ ही इन मरीजों में कॉर्टिसोन हॉर्मोन, थॉयरायड हार्मोन के स्राव तथा मस्तिष्क के कुछ और रसायनों के स्राव में भी असंतुलन हो जाता है।

विश्वप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड के अनुसार यदि क्रोध बाहर निकलने के स्थान पर अंदर मुड़ जाता है तो व्यक्ति स्वयं को असहाय महसूस करते हैं, उन्हें घुटन होती है, अपराध-बोध हो सकता है, हीन भावना हो सकती है, जिसके परिणामस्वरूप वे अवसाद ग्रस्त हो जाते हैं। गुण सूत्रों में बदलाव, वंशानुगत रूप से यदि संवेदनशील हे जो विपरीत परिस्थितियां होने, दुखद घटनाओं, असफलता मिलने, इच्छाओं की पूर्ति न होने पर व्यक्ति आसानी से निराश होकर अवसाद-ग्रसित हो सकते हैं।

अवसाद गंभीर समस्या है। इन मरीजों की कार्य क्षमता जीवन की गुणवत्ता तथा जीवन स्तर कम हो जाता है। जीवन में न तो स्वयं खुश संतुष्ट रहते हैं न ही दूसरों को रहने देते है। परिवार, समाज में प्रतिष्ठा कम हो जाती है। जिसके मन में निराशावादी नकारात्मक विचारों की प्रधानता होती है, उसे जिंदगी का हर क्षेत्र अंधकारमय नजर आता है।

समाधान :

अवसाद स्वतः ही ठीक नहीं होता। अतः इनका शुरुआती अवस्था में ही उपचार करवाना नितांत आवश्यक है जिससे व्यक्ति अवसाद-मुक्त हो जाए तथा दुबारा अवसाद-ग्रस्त न हो।

मनोरोग-चिकित्सक मनश्चिकित्सा (साइकोथिरैपी) और प्रति-अवसादक (anti depressant) औषधियों द्वारा करते हैं।

मनश्चिकित्सा के लिए चिकित्सक विश्लेषण कर अवसाद के कारण का पता लगाने का प्रयास करते हैं और फिर इनके अर्ध चेतन में समाई कुंठाओं, गलत फहमियों, अंतर्दवंद्व को दूर करने का प्रयास करते हैं।

इन मरीजों की वर्तमान समस्याओं को पहचान कर उनके निवारण के यथासंभव प्रयास करने चाहिए। इन मरीजों का आत्मविश्वास, आत्म-सम्मान बढ़ाने के प्रयास करने चाहिए, कार्य करने के लिए उत्साह-वर्धन करना चाहिए।

अवसाद के उपचार के लिए अनेक प्रभावी दवाएं उपलब्ध हैं। पर इन दवाइयों के प्रभावी होने में 3 से 4 सप्ताह का समय लगता है, अतः मरीज और परिवारजनों को धैर्य रखना चाहिए। दवाइयों को नियमित रूप से स्वस्थ होने के कम से कम 6 माह बाद तक सेवन करना पड़ता है जिससे स्थायी राहत मिले। कुछ मरीजों को आजीवन दवाओं का सेवन करना पड़ सकता है।

गंभीर अवसादग्रस्त होने, आत्महत्या के विचार आने या उसका असफल प्रयास करने पर मरीजों का उपचार अस्पताल में भर्ती करवा कर करवाना पड़ता है। कुछ गंभीर रूप के अवसाद के मरीजों को बिजली के झटके (ई.सी.टी.) से राहत मिलती है। उपचार के दौरान भी इन मरीजों को नियमित अंतराल पर चिकित्सक से परामर्श लेते रहना चाहिए जिससे दवाइयों के प्रभाव-दुष्प्रभाव का आकलन कर औषधि की मात्रा, औषधि में समुचित बदलाव लाया जा सके और उपचार प्रभावी हो।

देश में अभी भी मनोरोगों के प्रति जागरूकता नहीं है। अधिकांश मरीज और परिवार के सदस्य मनश्चिकित्सक से परामर्श लेने, उपचार करवाने से कतराते हैं क्योंकि उन्हें भय होता है कि कहीं वे पागल न करार कर दिए जाएं। देश में अधिकांश अवसाद-ग्रस्त मरीजों का उपचार नहीं हो पाता। यदि करवाते हैं तो आधा अधूरा करवाते हैं। ये मरीज स्वयं तो दुखी उदास रहते ही हैं, साथ ही समाज, परिवार का वातावरण गमगीन बना सकते हैं। अवसाद-संक्रमित सदस्य दूसरों को भी प्रभावित कर सकते है। साथ ही यह परिवार तथा समाज के लिए समस्याए, जटिलताएं उत्पन्न कर सकते हैं। यह सोचना भी नादानी है कि अवसाद स्वतः ही समाप्त हो जाएगा। अतः इनका समुचित नियमित उपचार आवश्यक है जिससे स्वयं भी सुखी, सफल होगें, परिवार भी सुखी रहेगा।

विज्ञान समाचार

300 साल पहले नींद से जगा था हमारी गैलेक्सी का ब्लैक होल :

जापान के खगोलवैज्ञानिकों ने दावा किया है कि हमारी आकाशगंगा (मिल्की वे) का ब्लैक होल तीन सौ साल पहले सक्रिय हुआ था।

नासा ने कहा, अमेरिकी, यूरोपीय और जापानी उपग्रह का प्रयोग कर इस रहस्य पर से पर्दा हटाया कि हमारी आकाशगंगा में मौजूद यह ब्लैक होल सैजीटेरियस ए इतना शांत क्यों है, जबकि इसका द्रव्यमान सूरज से चालीस लाख गुना ज्यादा है। इस शोध का नेतृत्व करने वाले जापान के क्योटो विश्वविद्यालय के तातसुआ इनयूनी ने कहा, हमें आश्चर्य है कि क्यों मिल्की वे का ब्लैक होल एक सोए हुए दैत्य की माफिक था लेकिन अब हम यह कह सकते हैं कि पूर्व में ब्लैक होल बहुत सक्रिय था। शायद अब यह अत्यधिक सक्रियता के बाद आराम कर रहा हो। 1994 से 2005 के प्रेक्षणों को इकट्ठा करने के बाद यह पता चला है कि एक्स-किरणों की मौजूदगी में ब्लैक होल के केंद्र में बने गैस के बादल अचानक चमके और फिर फीके पड़ गए। जब गैस के गोले ब्लैक होल की तरफ बढ़े तो उनका तापमान करोड़ों डिग्री तक पहुंच गया और उनसे एक्स-किरणें निकलनी शुरू हो गईं। जैसे-जैसे ब्लेक होल के पास ये बादल जमा होते गए, एक्स किरणें और ज्यादा निकलने लगीं।

ब्लैक होल और एक बड़े बादल सैजीटेरियस बी 2, के बीच की दूरी तय करने में इन एक्स-किरणों ने 300 साल लिए। इसलिए यह माना जा सकता है कि ब्लैक होल के सक्रिय होने की तीन सौ साल पहले की इस घटना के लिए बादल ही जिम्मेदार हैं।

जब एक्स-किरणें बादलों तक पहुंचती हैं तो वे लोहे के परमाणुओं से टकराकर उनसे इलेक्ट्रॉनों को बाहर निकाल देतीं है जो परमाणुओं के केंद्रक के पास होते है। जब केंद्र से दूर स्थित इलेक्ट्रॉन इस जगह को भरने आते हैं तभी लोहे के परमाणु एक्स-किरणें निकालने लगते हैं। जैसे ही ये किरणें बादलों को भेदती हैं, वैसे ही बादल अपनी चमक खोने लगता है। टीम के सदस्य कातसूजी कोयामा ने कहा कि, दस साल से ज्यादा समय तक इस बात पर नजर रखी गई कि कैसे ये गैस के बादल चमकते और अपनी चमक खोते हैं और इस तरह से हम तीन सौ साल पहले की गतिविधियां जान सके।

8

विषाणु : प्रकृति के शत्रु भी और मित्र भी

- विजन कुमार पांडेय *

विषाणु (वायरस) प्रकृति के शत्रु भी हैं और मित्र भी। दोनों प्रकार से अपनी-अपनी महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाते हैं। विषाणु बहुत ही सूक्ष्म जीव हैं। इन्हें शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी से भी नहीं देखा जा सकता। ये एक तरफ रोग फैलाने का काम करते हैं तो दूसरी तरफ रोग-नियंत्रक की भूमिका भी निभाते हैं। प्रस्तुत लेख में विषाणु का संक्रमण किस प्रकार से होता है, उनका जीवन-चक्र कैसे पूरा होता है और वर्गीकरण किन आधारों पर किया गया है, इत्यादि का संक्षिप्त विवेचन किया गया है।

विषाणु इतने सूक्ष्म जीव हैं कि शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी से भी नहीं देखे जा सकते। वायरस एक लैटिन शब्द है जिसका अर्थ है विष। हिंदी में इसका नाम विषाणु रखा गया है। पृथ्वी पर जीवन विषाणु तथा जीवाणु की अवस्था में ही सर्वप्रथम पनपा। जीवाणु, विषाणु तथा कवक जहां एक तरफ रोगकारक का कार्य करते हैं वहीं दूसरी तरफ वे रोगनियंत्रक की भूमिका भी निभाते हैं।

विषाणु का संक्रमण कैसे होता है? :

कोशिका के बिना विषाणु का कोई अस्तित्व नहीं होता। कोशिका में घुसकर विषाणु, आवरण को फेंकता है जिससे कोशिका के अंदर उसका केवल न्यूक्लीक अम्ल रह जाए। कोशिका द्रव्य में पहुंचने के बाद वे पृथक्करण प्रोटीन तैयार करते हैं। विषाणु अपना भोजन अन्य जीवों से प्राप्त करते हैं। इन्हें पनपने के लिए जीवित कोशिकाओं की जरूरत होती है। जीवित कोशिकाओं में आर. एन. ए. तथा डी. एन. ए. अम्ल दोनों ही पाए जाते हैं। संक्रमण के 10 मिनट बाद मुख्य कोशिका में इतने अधिक विषाणु बन जाते हैं कि उसमें जगह नहीं बचती।

हमारे आसपास के वातावरण में कई प्रकार वायरस घूमते रहते हैं जो हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। जिन व्यक्तियों की प्रतिरोधक क्षमता ज्यादा होती है, वे इससे बच पाते हैं। विश्व में अनेक खतनाक तथा लाइलाज बीमारियों को ये विषाणु ही फैलाते हैं।

विषाणु का जीवन-चक्र

विषाणु कोशिका में प्रवेश करने के बाद गुप्त या गंभीर संक्रमण करते हैं। गंभीर संक्रमण में कोशिकाएं

* बड़ी बाग, लंका मैदान (मजार के पास) शहरी गोड़ा, गाजीपुर 233001

इनका सामना नही कर पाती हैं तथा संक्रमित होकर नष्ट हो जाती हैं। कोशिका-द्रव्य में मुख्य जीवाणु के पहुंचते ही विषाणु का न्यूक्लीक अम्ल, मुख्य कोशिका के न्यूक्लीक अम्ल पर कब्जा जमा लेते हैं और उससे अपने अनुसार प्रोटीन कणों तथा न्यूक्लीक अम्लों का निर्माण करवाकर नये वायरस का निर्माण करते हैं। इस प्रकार ये विषाणु कोशिका को नष्ट कर बाहर आ जाते हैं।

वायरस इतने सूक्ष्म होते है कि इनकी आकृति का सही पता नहीं लगाया जा सकता। इनके आकार तथा आकृतियां अनेकों होती हैं।

वायरस द्वारा गुप्त संक्रमण :

इस संक्रमण में विषाणु का न्यूक्लीक अम्ल कोशिका के न्यूक्लीक अम्ल में मिश्रित हो जाता है तथा कोशिका को बिना नुकसान पहुंचाए पीढ़ी-दर पीढ़ी पड़ा रहता है। यहां निष्क्रिय रहता है। विपरीत परिस्थितियां आने पर छिपे इन विषाणुओं की आक्रमकता बढ़ जाती है। विभिन्न प्रकार के रासायनिक परिवर्तन, पराबैगनी किरणों या मौसम परिवर्तनसे ये विषाणु जागृत हो जाते हैं। वायरस का मुख्य भाग न्यूक्लीक अम्ल होता है। न्यूक्लीक अम्ल वलय के रूप में वायरस के मध्य में रहता है। यह प्रोटीन की बनी दोहरी सतह वाली सुरक्षा कवच से ढका रहता है। इस बाहरी कवच को कैप्सिड कहते हैं। वास्तव में वायरस दो पदार्थों के मिलने से बनते हैं। वे पदार्थ हैं- प्रोटीन तथा न्यूक्लीक एसिड। यह एक अक्रिय रसायन है जो शरीर में प्रवेश करते ही जीवंत हो जाता है तथा अपने अनुसार जीव-रसायनीय अभिक्रियाओं पर अधिकार जमा लेता है। वायरस बीमारी फैलाते हैं, अतः इन्हें मृत नहीं माना जा सकता।

छोटी चेचक के विषाणु तथा एड्स का ह्यूमन इम्यूनो डेफीसिएन्सी वायरस गुप्त संक्रमण के ज्वलंत उदाहरण हैं। कैंसर-जैसे भयानक रोग में कोशिकाओं की अनियंत्रित तथा असीमित वृद्धि होती है। ओन्कोजीनी वे पदार्थ हैं जो कैंसर उत्पन्न करते हैं। कुछ विषाणु ओन्कोजीनी होते हैं इसका पता सर्वप्रथम अमेरिका के प्रसिद्ध सूक्ष्मजीवविज्ञानी जे. माइकेल बिशप तथा हैरोल्ड वेरमस ने लगाया। इस खोज के लिए उन्हें सन् 1989 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

विषाणुओं का वर्गीकरण तथा लक्षण

विज्ञान की वह शाखा जिसमें विषाणुओं का अध्ययन किया जाना है, विषाणुविज्ञान (वायरोलॉजी) कहलाती है। पहले विषाणुओं द्वारा जीवों को रोग-ग्रस्त कर देने के आधार पर वर्गीकृत किया गया था। अब रासायनिक संरचना ज्ञात होने पर, उसमें मौजूद न्यूक्लीक अम्ल के आधार पर वर्गीकृत किया गया है। इनके भौतिक तथा जैविक गुण-धर्म के आधार पर विषाणुओं को 3 गणों 56 कुलों तथा 233 वंशों में वर्गीकृत किया गया है। तीन गण क्रमश मोनोनिगैवायरेल्स, नीडोवायरेल्स और काउडोवायरेल्स हैं।

जीवाणुभोजी विषाणुः ये जीवाणुओं को अपना भोजन बनाते हैं। इन्हें फेज वायरस भी कहते हैं। सन् 1917 में ट्वार्ट तथा डी. हेरले दवारा इनकी खोज की गई जिसमें 800 A^0 व्यास वाली पुच्छ होती है। यह पुच्छ इन्जेक्शन की सूई की तरह कठोर कोशिका-भित्ति को छेद देता है तथा जीनोम अणु इससे होता हुआ जीवाणु में चला जाता है।

तंबाकू मोजैक : विषाणु आर.एन.ए. की एकल शृंखला है जो कि चारों तरफ से प्रोटीन के आवरण से ढके रहते हैं। इन विषाणुओं की लंबाई तथा चौड़ाई क्रमश 3000 A^0 तथा 180 A^0 होती है। इनमें 94.4% प्रोटीन तथा 5.6% न्यूक्लीक अम्ल होता है।

पोलियो विषाणु : ये आवरण-विहीन तथा सबसे छोटे होते हैं। इनमें आर.एन.ए. की एकल शृंखला उपस्थित होती है। घनाकार आकार के ये विषाणु तीन जातियों में पाए जाते हैं।

एड्स का विषाणु यह 90-120 नैनोमीटर व्यास का गोल आवरणयुक्त विषाणु होता है। जब यह मानव कोशिकाओं पर आक्रमण करता है तो विषाणु का आर.एन.ए. इसी एन्जाइम की मदद से डी.एन.ए. में

परिवर्तित हो जाता है।

अब तो जीन स्तर पर परिवर्तित जीवाणुओं का उपयोग मानव शरीर की बीमारियों की रोकथाम में किया जा रहा है। जैव तकनीक ने एक तरफ रोगकारक रोगाणुओं की रोकथाम का प्रयास किया है वहीं दूसरी तरफ इन्हीं जीवाणुओं के जीन गुणों में परिवर्तन लाकर उनका उपयोग रोगों की रोकथाम के लिए भी किया जा रहा है। •

शब्दावली आयोग की पाठसंग्रह (मोनोग्राफ) योजना

विषय-क्षेत्रः

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग हिंदी में विभिन्न वैज्ञानिक तथा तकनीकी विषयों पर पाठ-संग्रह (मोनोग्राफ) प्रकाशित करता है जिसके माध्यम से एक पुस्तिका के रूप में एक अकेले विषय की विस्तृत जानकारी हासिल की जा सकती है। ये पाठ-संग्रह (मोनोग्राफ) पाठक को पूरक पठन-सामाग्री उपलब्ध कराते हैं।

पाठ-संग्रहो के निर्माण एवं प्रकाशन की प्रक्रिया :

उपर्युक्त योजना के लिए आयोग द्वारा अनुप्रालित प्रक्रिया इस प्रकार है :

(1) वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग दैनिक समाचार-पत्रों में एक विज्ञापन निकलता है जिसके अनुसार विश्वविद्यालय पाठ्यविवरण से संबंधित विषयों पर मोनोग्राफ लिखने के ईच्छुक लेखकों से पांडुलिपियां आमंत्रित की जाती है ताकि पुस्तकों का प्रयोग संदर्भ-सामग्री या सूचना स्रोत के रूप में किया जा सके। विश्वविद्यालयों/संस्थाओं को भी परिपत्र भेजे जाते हैं।

(2) सबसे पहले लेखकों से यह अनुरोध किया जाता है कि वे उस शीर्षक का सार-संक्षेप भेजें जिस पर वे मोनोग्राफ लिखना चाहते है।

(3) सार-संक्षेप के प्राप्त होने पर उसे उस विषय के कम से कम 2 विशेषज्ञों द्वारा समीक्षा किए जाने के लिए भेजा जाता है।

(4) समीक्षकों का अनुमोदन प्राप्त करने के बाद लेखक आयोग के साथ एक करार पर हस्ताक्षर करता है और लेखक को करार के अनुसार कार्य करने के लिए अनुमति दे दी जाती है।

(5) लेखक को आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का प्रयोग करना होगा। उनसे आशा की जाती है कि वे करार में दिए अनुदेशों का पालन करते हुए आयोग को संपूर्ण पांडुलिपि भेजेंगे।

(6) अंतिम पांडुलिपि के प्राप्त होने पर उसकी समीक्षा आयोग में समीक्षक (समीक्षकों) की सहायता से एक समिति द्वारा की जाती है।

(7) पांडुलिपि का प्रकाशन सामान्य प्रक्रिया का पालन करते हुए किया जाता है।

(8) आयोग अपनी और से भी विख्यात लेखको से विनिर्दिष्ट विषयों/क्षेत्रों पर पांडुलिपि आमंत्रित कर सकता है।

9

बेर की खेती - एक लाभप्रद व्यवसाय

- डॉ. एन.के. बोहरा *

बेर जिसे बोर या बोरड़ी के स्थानीय नामों से जाना जाता है तथा वानस्पतिक भाषा में जिजिफस मोरिशियाना कहते हैं। इसे डेजर्ट एपल, इंडियन प्लम भी कहते हैं। बेर का वृक्ष भारत में पाया जाता है लेकिन शुष्क प्रदेश में वृक्ष समूह में भली भांति पनपता है। बेर का वृक्ष रेतीली अथवा नदी किनारे की दुमट मिट्टी में कृषि-योग्य भूमि अथवा मामूली-सी ऊसरी भूमि में भी उगता है। बेर का वृक्ष जल्दी बढ़ने वाला तथा बारहों महीने हरा-भरा रहने वाला पौधा है। इसकी ऊंचाई 3 से 12 मीटर तक होती है। बेर के कांटे आगे से थोड़ा मुड़े हुए एवं तीक्ष्ण होते हैं। बेर मुख्य दो प्रकार के होते है - (1) चणी बेर (2) बड़े बेर। चणी बेर के पौधे परती भूमि में स्वतः ही उगते हैं तथा इस बेर की कलम को लगातार अधिक उपजाऊ बनाया जा सकता है। कलमी बेरों की विभिन्न जातियों में गोला बेर, काशी बेर, बनारसी-अजमेरी बेर, रांदेरी बेर आदि हैं।

बेर का वृक्ष 38 से 49 डिग्री सेल्सियस के अधिकतम तापमान तथा 6 से 3 डिग्री से. के न्यूनतम तापमान एवं 130 से 2300 मिलीमीटर की औसत वार्षिक वर्षा की जलवायु में उग सकता है। यह सूखे एवं पाले से प्रभावित नहीं होता है। यह रेतीली, मध्यम कल्लर भूमि, मध्यम काली और अच्छी निथार वाली भूमि में उग सकता है। बेर के वृक्ष में पुनःफूटान द्वारा एवं जड़ों से विकसित रूढ़ चूषक मूलों के द्वारा पुनरुत्पादन की क्षमता होती है। बेर में अक्टूबर-नवंबर माह में फूल आते हैं तथा दिसंबर से फरवरी महीने तक बेर लगने शुरू हो जाते हैं। पके हुए बेर के बीज को ही बोने के लिए चुना जाता है। परिपक्व बेर के बीज में 70 प्रतिशत तक अंकुरण हो सकता है इसके बीजों को भंडारित करने पर अंकुरण-क्षमता में कमी होती है परंतु यह 2-2.5 वर्ष तक विद्यमान रहती है।

पौधशाला तकनीक : इसके बीजों को सामान्यतः किसी प्रकार के उपचार की जरूरत नही होती परंतु बीजों को उगाने के लिए सामान्यतः निम्न तकनीक अपनाई जाती है।

बेर के बीज को 17 प्रतिशत नमक के पानी वाले घोल में डालने पर जो बीज नीचे बैठ जाएं वे बीज उग जाएंगे जबकि तैरते हुए बीज नहीं उगेंगे। नमक के घोल में पेंदे में बैठे बीजों को निकालकर उनकी ऊपरी खोल को सावधानी पूर्वक फोड़कर उन्हें बोया जाता है। बेर के बीजों को पोलीथीन बेग म फरवरी माह में 1.5 सेमी. गहराई में बोया जाता है। देशी बेर का बीज गोल होता

* प्लॉट नम्बर - 389, गली नं. 10, मिल्कमैन कॉलोनी, पाल रोड, जोधपुर (राज.)

है तथा एक किलोग्राम में 1240 से 1760 तक बीज होते हैं। क्यारियों में बीजों की बुआई 15 सेमी. की दूरी पर लाइनें बनाकर 5 सेमी. के फासले पर की जाती है तथा पौधों पर पत्ते विकसित होने पर पोलीथीन की थैलियों में प्रतिरोपण कर दिया जाता है। 4 माह में पौधे 30 से 45 सेमी. ऊंचाई के होकर वृक्षारोपण-योग्य हो जाते हैं। तैयार हुए पौधों को जून-जुलाई माह में 4 मी. X 4 अथवा 6 X 6 मीटर पर रोपा जाता है।

जून-जुलाई में रोपे गए जमगली बेर के पौधे को दूसरे वर्ष जनवरी में जमीन से 1 फुट ऊंचाई पर काट देते हैं। अब इनमें से निकलने वाली नई डालियों में से एक को छोड़कर सभी को काट देते हैं तथा इन पर मार्च में पेन्सिल की मोटाई के बराबर डाली होने पर उन्नत किस्म के बेर की 5 से 10 सेमी. ऊंचाई पर टी बडिंग के तरीके से चश्मा चढाते हैं। जुलाई में बडिंग किए पौधे सूखकर काले लग जाते हैं। अतः इन पर 10-12 दिन के अंतराल पर 20 ग्राम डाइथेन जेड- 78 या एम-45, 10 लिटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

बेर की उन्नत किस्में : देशी या जंगली बेर के पेड़ों या झाड़ी को बडिग अथवा चश्मा चढ़ाकर आसानी से उन्नत किस्म के बेरों में बदला जा सकता है जिन पर बड़े आकार के स्वादिष्ट फल प्राप्त कर किसान अपनी आय बढ़ा सकते हैं। रेगिस्तानी जिलों में, जहां सिंचाई सुविधा का अभाव होता है, सेव, गोला किस्में उपयुक्त रहती हैं जबकि सिंचित क्षेत्रों के लिए मुंडिया, बगवाडी (जयपुर जिला हेतु) किस्म उपयुक्त रहती है। अलवर भरतपुर एवं सवाई माधोपुर जिलों के सिचिंत व असिंचित क्षेत्रों में अलवरी गोला एवं राजस्थान के सभी जिलों में चोंचल किस्म (निचला सिरा चोंच के आकार का) की पैबंद चढाई जा सकती है।

देशी बेर पर चश्मा चढाकर उन्नत किस्म के पौधे तैयार करना : इस विधि से बोरडी व पाला बेर के पुराने वृक्षों पर चश्मा चढाकर उन्हें टी बडिंग या रिंग ग्राफ्ट द्वारा उन्नत किस्म में आसानी से बदला जा सकता है। सीधे बीज से पौधे उगाकर उन पर भी 1या 2 वर्ष बाद चश्मा चढ़ा सकते हैं। टी बडिंग की विधि इस प्रकार हैं-

1. इस हेतु दिसंबर-जनवरी में 5 से 20 वर्ष की उम्र के बोरड़ी (देशी बेर) के पेड़ों का चयन करना चाहिए। मार्च-अप्रैल में इन चयनित वृक्षों के मुख्य तने को आरी से 1.5 से 2 मीटर की ऊंचाई से काट देते हैं। यदि बडिंग झाड़ी बेर पर करना है तो मुख्य तने को धरती की सतह पर काटना चाहिए। कटाई के पश्चात् कटे भाग पर कोलतार का लेप करना उचित रहता हैं।
2. 15 अप्रैल तक जिस उन्नत किस्म का चश्मा चढाना हो उन पेड़ों की छंगाई करनी चाहिए जिससे समय पर आवश्यकतानुसार स्वस्थ उभरी आंखे (बड) प्राप्त हो सकें। देशी बेर की केवल 3 या 4 फुटान (जो आपस में बराबर की दूरी पर हों व पेन्सिल की गोलाई की हों) को छोड़कर शेष सभी कोपिस हटा देनी चाहिए।
3. चश्मा चढाने हेतु 'टी' विधि सर्वाधिक उपयुक्त है। इस विधि में देशी शाखा की गोलाई के आधे हिस्से पर धारदार चाकू की सहायता से चीरा लगाएं। इसके पश्चात् टहनी की लंबाई में पूर्व में लगे चीरे के बीच से 1 से 1.5 सेमी. लंबा चीरा लगाएं जिससे अंग्रेजी का टी आकार बन जाए।
4. उन्नत किस्म के पेड़ों से उसी गोलाई की स्वस्थ उभरी हुई आंख, नई कोपिस की शाखा से प्राप्त कर लेते हैं। आंख की छाल के साथ लकड़ी का हिस्सा भी लेना उपयुक्त रहता हैं जिसे बाद में चाकू से अलग कर लेते हैं।
5. देशी बेर पर जहां 'टी' आकार का चीरा लगा हो उसे चाकू की सहायता से छीलकर उसमें अच्छी तरह से उगी आंख को ठीक तरह बांध देते हैं। यदि आंख दूर से लानी हो तो, उभरी हुई आंख वाली टहनियों को पेड़ों से 40 से 50 सेमी. लंबाई में काटें जिसमें 3-4 स्वस्थ आंखें हों। इन आंखों को प्लास्टिक की थैली या भीगी टाट में लपेटकर ले जाना चाहिए एवं 12 घंटे के अंदर उपयोग में लाना चाहिए।
6. चश्मा चढ़ाने के 10-15 दिनों के बाद आंख में फुटान शुरू हो जाती है। आंख के निचले तथा ऊपरी वाले देशी तने से जो भी फुटान चालू हो, उसको समय-समय पर हटाते रहना चाहिए। चश्मा चढ़ी आंख से जब फुटान लगभग 5 सेमी. हो जाए तो देशी शाखा को 4 से 5 सेमी. ऊंचाई से काट देते हैं।

बेर के उपचार : बेर में वृक्ष रोपने के बाद तीसरे वर्ष से बेर लगने शुरू होते हैं। फिर धीरे-धीरे उचित उपचार से प्रति वर्ष इसके उत्पादन में बढोतरी होती रहती है। वर्षा शुरू होने पर चारों ओर से 2 से 2.5 मीटर व्यास का घेरा बनाकर उसके अंदर की मिट्टी को खोदकर, ढीला कर उसमें 3-4 टोकरी देशी खाद (कंपोस्ट) डालनी चाहिए। एक किलोग्राम सुपर फॉस्फेट एवं 500 ग्राम अमोनियम सल्फेट प्रत्येक बेर के पेड़ में डालने से फलों का आकार बढ़ता है तथा बेर झड़ते नहीं हैं। यदि बेर की सिंचित खेती की गई हो तो अक्टूबर से फरवरी के महीने तक 15 से 25 दिन के अंतर पर 7 से 8 बार पानी देना चाहिए।

बेर को फलमक्खी तथा सफेद लट हानि पहुंचाते हैं। फलमक्खी कीट का प्रकोप फरवरी-मार्च में शुरू हो जाता है। इसके लिए डायमिथोएट 30 ई.सी. 2 मि.ली या एन्डोसल्फान 35 ई.सी 2 मि.ली या मैलाथियान 50 ई.सी 1.5 मि.ली को एक लिटर पानी में मिलाकर जरूरत के अनुसार 15 दिन के अंतराल पर छिड़कना चाहिए। सफेद लट शुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों में जुलाई-अगस्त में हानि पहुंचाता है। यह बेर की नई कोपलों को नुकसान पहुंचाता है। इस हेतु सेविन 50 प्रतिशत तथा 0.5 मि.ली. डाइमेक्रोन का घोल बनाकर प्रातः या दोपहर छिडकना चाहिए।

बेर की छंटाई एवं उपज : बेर के वृक्ष को हर वर्ष छाटने से उपज में वृद्धि होती है तथा गुणवत्ता सुधरती है। इससे रोग तथा जीवाणुओं वाली डालियां नष्ट होती हैं। बेर की छँटाई गर्मी में मार्च-अप्रैल में करनी चाहिए। बेर के पौधे तैयार करके कलम किया हुआ बेर का वृक्ष तीसरे वर्ष से उत्पादन शुरू कर देता है। अच्छी तरह देखरेख करने पर तथा सिंचित खेती से बेर का वृक्ष 80 से 100 किलोग्राम तक उपज प्रति वर्ष देता है जबकि असिंचित प्रकार के कलमी बेर 40 किलोग्राम उपज देते हैं।

बेर की आधुनिक खेती : आधुनिक युग में कई प्रकार के पादप हॉर्मोनों से बेर की खेती की जाती है। बेर के वृक्ष पर छिडकाव करते हैं जिससे इसके पत्ते मोटे हो जाते हैं तथा वाष्पोत्सर्जन दर एवं जिब्रालिन्स हार्मोनों का उत्पादन भी कम हो जाता है। इस छिड़काव के 15 दिन बाद बेर के वृक्ष को पानी तथा यूरिया खाद दी जाती है। इससे वृक्ष में पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ती है तथा फूल अधिक आते हैं। अधिक फूल आने पर पेक्टिन की मात्रा घट जाती है जिससे फूल मुरझाकर गिर जाते हैं। अतः फूल आना शुरू होते ही पेक्टिन एवं ऑक्सीन की मात्रा बनाए रखने हेतु ऑक्सीन का घोल (यह बाजार में प्लानोफिक्स, सेलमोन, होमोफिक्स, प्लान्टामोन आदि नामों से मिलता है) बेर पर छिड़का जाता है। इससे फल तो अधिक लगने लगते हैं परंतु छोटे-छोटे रह जाते हैं। ऐसी अवस्था में बड़े आकार के फल प्राप्त करने के लिए जिब्रालिक एसिड एवं ऑक्सीन का छिड़काव करते हैं जो बाजार में जिब्रालिक एसिड-3 के नाम से उपलब्ध रहता है। इसके अतिरिक्त काइनेटिन हॉर्मोन का छिडकाव करने से फलों की कोशिकाओं का उत्पादन अधिक होगा तथा फल बड़े होंगे। इस प्रकार की आधुनिक खेती में अधिक संख्या में तथा बड़े-बड़े फल लगते हैं जिन्हें

समय पर पकाने के लिए इथेफोन नामक हॉर्मोन का छिड़काव करते हैं।

उपयोग : बेर मुख्यतः फल के रूप में खाया जाता है। आयुर्वेद के मतानुसार बेर मधुर, स्निग्ध, वातपित्त को जीतने वाला तथा बवासीर, अतिसार एवं स्वप्नदोष-जैसे रोगों में औषधि के रूप में उपयोग में आता है। बेर में प्रोटीन, क्षार, फॉस्फोरस, कैल्सियम, कैरोटिन तथा विटामिन सी एवं लौह तत्व होते हैं। बेर की लकड़ी जलाने के काम आती है तथा प्रति वर्ष अधिक छंगाई करने से अधिक जलावन प्राप्त होता है। इसकी लकड़ी से उपयोगी औजार एवं खूंटे भी बनते हैं। बेर के पत्ते भेड़-बकरियों एवं ऊंट के चारे के रूप में प्रयुक्त होते हैं तथा यह पौष्टिक आहार है। बेर की कांटेदार डालियां, बाड़ बनाने के उपयोग में ली जाती है तथा बेर के पेड पर लाख तथा रेशम के कीडे पालकर लाख तथा रेशम प्राप्त किया जा सकता है। पेमदी बेर से 5वें वर्ष में 6X6 मीटर की दूरी पर रोपित पेड़ों से 30 से 40 किग्रा. फल प्रति वृक्ष प्राप्त होने लगते हैं। बेर के बगीचे से 22 से 25 हजार रुपए प्रति हेक्टेयर की वार्षिक आय प्राप्त हो सकती है। बेर राजस्थान का सर्वसुलभ, उपयोगी, फल है तथा इसी कारण इसे राजस्थान का मेवा कहते हैं। बेर की खेती वास्तव में एक लाभप्रद व्यवसाय है।

विज्ञान समाचार

सुपर प्वाइजन की काट

सायनाइट सबसे खतरनाक जहर है। अभी तक इस जहर की कोई काट नहीं थी। इसके असर से मौत को तय माना जाता था। लेकिन अब इस सुपर प्वाइजन का तोड़ भी वैज्ञानिकों ने खोज लिया है।

सायनाइट के प्रभाव से तत्काल ही शरीर में ऑक्सीजन का जाना बंद हो जाता है। अभी तक इसके उपचार के लिए जो भी दवाएं बाजार में हैं वे इसके असर को जल्द कम नहीं कर पाती हैं और ऑक्सीजन की कमी से मरीज की मौत हो जाती है। अब जो नया एंटीडोट खोजा गया है वह तीन मिनट से भी कम समय में सायनाइट के प्रभाव को कम करने लगता है। प्रभाव कम होते ही शरीर में ऑक्सीजन की पूर्ति शुरू हो जाती है।

यह नई खोज मिनिसोटा यूनिवर्सिटी के सेन्टर फॉर ड्रग डिजाइन व मिनेपोलीस मेडिकल सेन्टर के वैज्ञानिकों ने की है। अभी इस दवा का प्रयोग जानवरों पर किया गया है। उम्मीद है कि अगले तीन वर्षों में इसका प्रयोग मानवों पर भी किया जाएगा।

एक उपचार-पद्धति है बागवानी भी

(10)

- सीताराम गुप्ता *

पादप-चिकित्सा अर्थात् पेड़-पौधों अथवा जड़ी-बूटियों द्वारा चिकित्सा के विषय में आपने न केवल सुना या पढ़ा होगा अपितु इस विधि से उपचार भी अवश्य किया होगा, जैसे चाय में अदरक या तुलसी की पत्तियां डाल कर पीना, दूध में हल्दी मिला कर पीना या हर्बल चाय का प्रयोग आदि। लेकिन विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधों, वनस्पतियों, साग-सब्जियों तथा फल-फूलों को उगाना, उनकी देखभाल करना, (जो एक विज्ञान भी है तथा कला भी– जैसे बागवानी पुष्पोत्पादन, फलोत्पादन या सब्जियों की खेती आदि) एक उपचार पद्धति भी है।

पौधों को उगाना, उनकी देखभाल करना और उनकी पैदावार से लाभ कमाना एक व्यवसाय हो सकता है। लेकिन यह एक रचनात्मक कार्य भी है। विशेष रूप से शौकिया बागवानी या गमलों में पौधे उगाने और रचनात्मक कार्य से न केवल हमारे ऊर्जा के स्तर में वृद्धि होती है बल्कि जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी हमारी रचनात्मकता में वृद्धि होती है। कई प्रकार के रोगों में मनश्चिकित्सक इस प्रकार के कार्य करने का परामर्श भी देते हैं जिसे ऑक्यूपेशनल थिरेपी या व्यावसायिक चिकित्सा कहते हैं। सिलाई-कढ़ाई, टोकरी बुनना, दरी-कालीन बुनना, मिट्टी अथवा धातु की मूर्तियां बनाना, लकड़ी, बांस अथवा बेंत का सामान बनाना अथवा चित्रकला आदि इस प्रकार की चिकित्सा में सहायक होते हैं। लेकिन बागवानी इनमें महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें हमारी रचनात्मकता में वृद्धि के साथ-साथ प्रकृति से भी हमारा जुड़ाव हो जाता है। बीजों से अंकुर निकलना, कलमों की गांठों से पत्तियों का विकसित होना, पौधों का बढ़ना, निरंतर नई-नई पत्तियों का आना और उनके रंग में परिवर्तन होना, कलियों का दृष्टिगोचर होना तथा फूलों का खिलना ऐसी क्रियाएं है जिनका अवलोकन हमें प्रकृति से जोड़ कर नई स्फूर्ति, नई चेतना से भर देना है।

सर्दियों में पत्र-पुष्प विहीन, ठूँठ-सा लगने वाला पौधा जब वसंत ऋतु का स्पर्श पाकर गांठ-दर-गांठ फूटने लगता है, पल्लवित-पुष्पित होकर अपनी छटा बिखेरने लगता है तो उसे देखकर हमारा मन भी पल्लवित पुष्पित होने लगता है। हमारी कल्पनाशीलता का विकास होता है तथा रचनात्मकता के स्तर में वृद्धि होती है। 'मन प्रसन्न तो तन प्रसन्न' अर्थात् स्वस्थ होने में देर नहीं लगती। हम दुगुने वेग से पौधों की देखभाल में जुट जाते हैं। प्रकृति अपने नए-नए रूपों में प्रकट होने लगती है। प्रकृति की इस अनुपम रचनात्मकता को देखकर हम स्वयं रचनात्मक होने लगते हैं, कलाकार बन जाते हैं।

ए.डी. 106 सी, पीतमपुरा, दिल्ली - 110088

मैंने अपने जीवन में जो पहली कविता लिखी थी वह पौधों की देखभाल के दौरान ही निःसृत हुई थी। पौधों की देखभाल, कटाई-छंटाई, उचित मात्रा में खाद-पानी देना, उनको सलीके से रखना तथा सजाना-संवारना हमारे स्वयं के अंदर एक सुव्यवस्था को उत्पन्न करता है। हम अपने जीवन में अधिकाधिक व्यवस्थित होने लगते हैं और इन सबका हमारे स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। पौधों की कटाई-छंटाई और उसके बाद नई-नई कोंपलों का विकसित होना इस बात पर प्रतीक है कि हम अपने मन में समाए नकारात्मक तथा अनुपयोगी विचारों से मुक्त हो कर उनके स्थान पर उपयोगी सकारात्मक विचारों एवं स्वस्थ्य दृष्टिकोण का विकास कर रहें हैं- योग में वर्णित यम और नियम की तरह।

जब प्रतिकूल मौसम की वजह से अथवा अन्य प्राकृतिक कारणों से पौधे नष्ट हो जाते हैं अथवा उनके अपेक्षित मात्रा में वृद्धि नहीं होती या फूल-फल नहीं आते तो इसके परिणामस्वरूप हमारे अंदर प्रतिकूल परिस्थितियों में भी धैर्य बनाए रखने-जैसे गुणों का विकास होने लगता है।

आप अपने रहने के कमरे में बनावटी पौधों की जगह यदि वास्तविक पौधे रखते हैं तो आपके पूरे परिवार के स्वास्थ्य और चिंतन पर इसका अत्यंत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इससे न केवल आपको प्राकृतिक परिवेश मिलता है अपितु ऑक्सीजन के रूप में अधिकाधिक मात्रा में जीवनदायिनी ऊर्जा प्राप्त होती है। हमारी प्राणदायिनी शक्ति अथवा ऊर्जा के स्तर में वृद्धि का सीधा-सा तात्पर्य है अधिकाधिक स्वस्थ तथा उत्साहपूर्ण होना। प्रकृति अथवा पेड़-पौधों का सामीप्य न केवल पर्यावरण प्रदूषण को सोखकर हमें स्वच्छ परिवेश उपलब्ध कराता है अपितु हमारे तनाव, दुश्चिंता, क्रोध और कुंठा- जैसे नकारात्मक मनोभावों को अपने में सोखकर हमें सकारात्मक ऊर्जा तथा मनोभावों से ओतप्रोत कर देता है। पौधों की देखभाल से उत्पन्न खुशी हमें अन्य जीव-जंतुओं, समाज के विभिन्न वर्गों, व्यक्तियों की देखभाल तथा जिम्मेदारी लेने की प्रेरणा भी प्रदान करती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि बाग़वानी में ध्यान अथवा मेडिटेशन के लगभग सभी तत्व विद्यमान हैं जो हमें स्वस्थ बनाए रखने तथा रोगमुक्त करने में सक्षम हैं।

जब आप अपने हाथ से उगाए गये धनिये या पोदीने की चटनी बनाते है या करी पत्ता सब्ज़ी या दाल में डालते हैं तो उसका स्वाद आपको एक नए आनंद से भर देता है। स्वयं उगाए गए पौधे के मात्र एक पुष्प को भी जब हम पूजा के समय देव प्रतिमा के चरणों में अर्पित करते हैं तो हमारी पूजा की आध्यामिकता कई गुना बढ़ जाती है।

मुझे याद है बचपन में मैंने घर में तोरी की बेल उगाई थी। जब बीजों से अंकुर निकले तो आश्चर्य और खुशी से मन प्रफुल्लित हो उठा। बेलों के बड़ा होने पर पीले-पीले फूलों के गुच्छों से लद गईं फिर अचानक उन पर लगी नन्हीं-नन्हीं तोरियों को देखकर मन बल्लियों उछलने लगा। पूरे शरीर में आनंद का अजस्र स्रोत प्रभावित हो उठा। यही आनंद का अजस्र स्रोत ही तो आरोग्य कारक हैं। भिंडी मुझे बहुत पसंद है। बचपन में मैंने भिंडी के पौधे भी खूब उगाए। पहली बार जब पहली फ़सल के रूप में मात्र दो भिंडियां पौधों पर दृष्टिगोचर हुई और वे बड़ी हुई तो मैंने एक दिन स्कूल में आकर उन्हीं दो भिंडियों की सब्जी बनाई और उसी से रोटी खाई। वह स्वाद और वह आनंद दुर्लभ है।

आप भी आनंद प्राप्त करने के लिए, स्वस्थ बने रहने के लिए बाग़वानी कीजिए। चाहे मात्र एक गमले से शुरुआत करें। एक बार यह सिलसिला प्रारंभ हो गया तो पीछे मुड़ कर नहीं देखेंगे। आपके गमलों की संख्या बढ़ती जाएगी। आपके फुरसत के क्षणों का सदुपयोग ही नहीं होगा, बल्कि आपकी व्यस्तता भी घनी होती जाएगी और साथ ही समय की भी आपको कमी महसूस नहीं होगी क्योंकि आप पूर्ण स्वस्थ होंगे। पूर्ण स्वस्थ होने का अर्थ है सदैव समय का अधिकाधिक उपयोग, उत्साहपूर्ण कार्य-शैली, नियमित दिनचर्या और अच्छे स्वास्थ्य की गारंटी भी।

(11)

धान मिल से होने वाले वायु-प्रदूषण का मजदूरों के स्वास्थ्य पर प्रभाव

- राजेश सिंह (शोधार्थी)*

डा. साधना चौरसिया (विभागाध्यक्ष)*

वायु मनुष्य के लिए आवश्यक जीवन-रक्षक तत्व है। सामान्य रूप में वायुमंडल में ऑक्सीजन एवं कार्बन डाइ-ऑक्साइड का संतुलन बना रहता है, किंतु बढ़ती जनसंख्या एवं औद्योगीकरण की दौड़ में मनुष्य वायु की प्राकृतिक स्वच्छता को नष्ट कर रहा है। मानव जाति ही इससे सबसे अधिक प्रभावित हुई है। पिछले दशक में कृषि को उद्योग का दर्जा दिए जाने के बाद से कृषिगत उद्योगों में सक्रियता आई है। इस अध्ययन में धान मिल से होने वाले वायु-प्रदूषण के मापन का प्रयास किया गया है एवं मजदूरों के स्वास्थ्य पर इसके प्रभाव पर अध्ययन किया गया है। धान मिल से निलंबित कणों का प्रदूषण काफी मात्रा में पाया गया, जो वायु की गुणवत्ता को नुकसान पहुंचाकर मजदूरों की कार्यक्षमता पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता है। वायु में निलंबित कणों का सह्यता स्तर 375 M_g/M^3 है जबकि धान मिल में इसकी सांद्रता कुल 100-800 M_g/M^3 पाई गई। इसी प्रकार श्वसनीय कणों की सांद्रता 400-1000 M_g/m^3 पाई गई तथा मजदूरों में श्वसन संबंधी रोग की संख्या अधिक पाई गई।

तीव्र नगरीकरण एवं औद्योगीकरण के कारण पर्यावरण प्रदूषण की समस्या गंभीर होती जा रही है। नगरों में पर्यावरण सतत रूप से प्रदूषित हो रहा है। प्रदूषण वृद्धि के कारण मानव स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा उत्पन्न हो रहा है। असामान्य ताप, प्रकाश, ध्वनि, अन्य जहरीले पदार्थ, वाष्प एवं गंधयुक्त दशाएं श्रमिकों की कार्यकुशलता पर विपरीत प्रभाव डालती हैं। श्वास एवं फेफड़ों के कार्यों में गिरावट, मजदूरों की कार्यक्षमता को घटाती है। औद्योगिक पर्यावरण अस्वास्थ्यकर दशाएं उत्पन्न कर अनेक बीमारियो को जन्म देता है।

वायु मनुष्य के लिए एक आवश्यक जीवन-रक्षक तत्व है। सामान्य वायु में 78% नाइट्रोजन एवं 0.03% कार्बन डाइ-ऑक्साइड तथा शेष निष्क्रिय गैस एवं जलवाष्प होते हैं। सामान्य रूप से वायुमंडल में ऑक्सीजन एवं कार्बन डाइऑक्साइड का संतुलन रहता है। किंतु औद्योगिक प्रगति की दौड़ में मनुष्य प्राकृतिक स्वच्छता को नष्ट किए चला जा रहा है और निःसंदेह वायुप्रदूषण से मानव जाति ही सबसे अधिक प्रभावित हुई है। इस दशक में जबसे कृषि को उद्योग का दर्जा दिया गया है तब से कृषिगत उद्योगों में सक्रियता आई है। उत्तर प्रदेश में बांदा जिले में बुंदेल खंड को धान की मंडी के रूप में जाना जाता है एवं इस क्षेत्र में अनेक धान मिलें कार्यरत है। धान से चावल निकालने में वायु-प्रदूषण सर्वाधिक होता है। प्रस्तुत आलेख में धान मिल से निकलने वाले वायु प्रदूषकों एवं मजदूरों से स्वास्थ्य पर उनके प्रभाव का अध्ययन किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र :

इस अध्ययन के लिए गिरवां कस्बे में स्थित भूतेश्वर धान मिल को चुना गया है जो कि नवगठित चित्रकूटधाम मंडल, जिला बांदा, तहसील नरैनी में स्थित है। चित्रकूटधाम मंडल में

* पर्यावरण विज्ञान विभाग, म.गां.चि.ग्रा.वि.वि. चित्रकूट, सतना (म.प्र.)

धान खरीफ की मुख्य फसलों में एक है। सिंचाई के लिए नहरों की सुविधा है। धान की प्रचुर पैदावार के कारण यहां अनेक धान मिलें कार्य कर रही हैं जो कि धान की उपलब्धता के आधार पर 15 दिसंबर से 30 जून तक कार्य करती हैं। इन मिलों में धान एवं फिटकरी का उपयोग कच्चे माल के रूप में होता है।

धान मिल में प्रयुक्त विधि का प्रवाह चित्र

कच्चा माल
धूप में सुखाना
छानना ठोस अशुद्धियां
धान की भूसी अलग करना भूसी
पॉलिश करना ब्रान
पैकिंग

सामग्री एवं विधि :

वायु गुणवत्ता आकलन के प्रमुख अवयव निलंबित कण सल्फर डाइऑक्साइड एवं नाइट्रोजन के ऑक्साइड हैं। चूंकि धान मिल में सर्वाधिक निलंबित कणों का प्रदूषण होता है अतः इसके अनुमापन का कार्य ही विशेष रूप से किया गया।

नमूना-संग्रह करने के लिए ए.पी.एम. 410 हाई वॉल्यूम सैम्पलर का प्रयोग किया गया है।

भूतेश्वर धान मिल में निलंबित कणों की मात्रा का अनुमापन प्रतिदिन एक माह तक प्रत्येक कार्य चरण में किया गया जिसका औसत विवरण सारणी 1 में दिया गया है।

स्वास्थ्य संबंधी जानकारी प्रश्नावली के माध्यम से एकत्र की गई है।

परिणाम एवं विश्लेषण :

धान मिल में प्रयुक्त होने वाली प्रक्रिया में वायु प्रदूषण सर्वाधिक होता है एवं यह प्रदूषण मुख्यतः निलंबित सूक्ष्मकणों के कारण होता है। वायु में निलंबित सूक्ष्म कणों के आकार के आधार पर इसे तीन कोटियो में विभाजित किया गया है।

(1) 5.0 μ से बड़े कम जो अश्वासन (नान-रिस्पॉन्सबिल) कहलाते है, नाक से ही रुक जाते हैं।

(2) 0.5-5.0 μ आकार के कण जो सूक्ष्म श्वास नली में पहुंच जाते हैं और अधिकांश कण रोम गति के द्वारा निकाल दिए जाते हैं।

(3) 0.5 μ से छोटे कण श्वास नलिकाओं में पहुंचकर उन्हे अवरुद्ध कर देते हैं तथा स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं।

धान मिल के विभिन्न कार्य चरणों में होने वाले सूक्ष्म कणों की सांद्रता सारणी 1 में प्रस्तुत है :

सारणी - 1: धान मिल में विभिन्न चरणों में निकलने वाले सूक्ष्मकणों का विवरण

क्र.सं.	उत्पादन प्रक्रिया	श्वसनीय कण (रिस्पॉन्सबिल)	अश्वसनीय कण (नान-रिस्पॉन्सबिल)	कुल सूक्ष्मकण (एस.पी.एम.)
1	सुखाना	$100\mu g/m^3$	$400\mu g/m^3$	$500\mu g/m^3$
2	धान की भूसी अलग करना	$600\mu g/m^3$	$800\mu g/m^3$	$1400\mu g/m^3$
3	भूसी एवं चावल अलग-अलग करना	$800\mu g/m^3$	$1000\mu g/m^3$	$1800\mu g/m^3$
4	पैकिंग	$500\mu g/m^3$	$400\mu g/m^3$	$900\mu g/m^3$

सारणी - 2: धूल के जैविक प्रभाव

क्र.सं.	धूल के प्रकार	स्त्रोत	प्रभावित अंग	रोग का नाम	जटिलताएं
क	**कार्बनिक धूल**				
1	धान से चावल अलग करने में निकली धूल	धान मिल	श्वसन तंत्र	कृषक फुफ्फुस	चिरकाली श्वसन-शोथ
2	अनाज की धूल	कृषि कार्य	फुफ्फुस, ऊतक	कृषक फुफ्फुस	
3	गन्ने की धूल	चीनी मिल	फुफ्फुस, ऊतक	बेगासोसिस	
4	कपास की धूल	रुई सफाई	श्वसन नली	बिसिनोसिस	
ख	**अकार्बनिक धूल**				
1	कोयला धूल	खनिज कर्म	फुफ्फुस, ऊतक	एन्थेकाइसिस	यक्ष्मा
2	एस.आई.ओ.2	पत्थर तोड़ना, पीसना खनिज कर्म	फुफ्फुस, ऊतक	सिलिकोसिस	यक्ष्मा
3	एस्बेस्टॉस	एस्बेस्टॉस उद्योग	फुफ्फुस, ऊतक	एस्बेस्टॉसिस	कार्सीनिया

स्रोत : अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (1976)

सारणी - 3: धान मिल से निकलने वाले वायु प्रदूषकों का मजदूरों के स्वास्थ्य पर प्रभाव

क्र.सं.	बीमारी के प्रकार	प्रभावित मजदूर	अप्रभावित मजदूर	कुल मजदूर	प्रभावितों का प्रतिशत
1	श्वसन तंत्र से संबंधित रोग	25	10	35	71.4
2	गले से संबंधित रोग	25	10	35	71.4
3	सिरदर्द, चक्कर आना	26	10	36	74.2
4	आंखों से संबंधित रोग	10	15	25	38.5
5	त्वचा से संबंधित रोग	12	23	35	34.2

अध्ययन के फलस्वरूप यह स्पष्ट है कि धान मिल से निलंबित कणों का प्रदूषण सहन स्तर 375 $\mu g/m^3$ से अधिक है। धान की भूसी अलग करने एवं भूसी और चावल अलग करने में क्रमशः 1400 $\mu g/m^3$ एवं 1800 $\mu g/m^3$ कुल निलंबित कणों की सांद्रता क्रमश : 600$\mu g/m^3$ एवं 800$\mu g/m^3$ पाई गई जो कि स्वास्थ की दृष्टि से काफी हानिकारक है। श्वसन संबंधी रोग का मजदूरों में अधिकता का यही संभावित कारण हो सकता है।

निष्कर्ष :

इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि धान मिल से होने वाले प्रदूषण से निलंबित कणों (एस.पी.एम) की मात्रा सहन स्तर से काफी अधिक है जिस पर नियंत्रण करने की आवश्यकता है। श्वसनीयं एवं अश्वसनीय धूल के कणों की सांद्रता पर भी नियंत्रण की आवश्यकता है जिससे कि मजदूरों के स्वास्थ्य पर इसका प्रतिकूल असर न पड़े।

सुझाव :

1. मजदूरों को मास्क व दस्ताने उपलब्ध कराए जाएं।
2. समय-समय पर मजदूरों के स्वास्थ्य का परीक्षण कराया जाए।
3. मिल में वायु आवागमन की पर्याप्त व्यवस्था हो।

संदर्भ ग्रंथ :

1. राव सी.एस. (1997) एनवायरमेन्टल पाल्यूसन कंट्रोल इंजीनियरिंग, न्यू एज इंटरनेशनल प्रा.लि. नई दिल्ली.
2 नीरी, नागपुर (1989) एयर क्वालिटी इन सिलेक्टेड सिटी ऑफ इंडिया।
3 आई.एस. 50182 (भाग दो) 1969, भाग चार, - 1973, भा 5 और 6-1975
4. पार्किस एच.सी. 1974,- एयर पॉल्यूशन।

आयोग द्वारा प्रकाशित मूलभूत शब्दावलियां

1. कंप्यूटर की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)
2. गणित की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)
3. भूगोल की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)
4. भूविज्ञान की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)
5. भौतिकी की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)
6. पशुचिकित्सा विज्ञान की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)
7. वनस्पतिविज्ञान की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)
8. कोयला उद्योग की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)
9. कृषिविज्ञान की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)
10. पर्यावरणविज्ञान की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)
11. प्राणिविज्ञान की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)
12. जैवप्रौद्योगिकी की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)
13. प्रशासन की मूलभूत शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)

(12)

कृषि में जल का महत्व

- ईशान देव *

संपूर्ण विश्व में पानी का इस्तेमाल सभी क्षेत्रों में तेजी से बढ़ता ही जा रहा है। आज दुनिया की छह अरब से ऊपर जा चुकी आबादी कुल उपयोग करने लायक पानी में से 54 प्रतिशत का वर्तमान में बेरोक-टोक उपयोग करने में लगी है। सकल विश्व की घरेलू, उद्योगों, कृषि, पेय एवं अन्य सभी क्षेत्रों में मिलकर हो रहा जल का यह उपयोग एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2025 तक बढ़कर 70 प्रतिशत पहुंच जाएगा। यदि जल खपत की प्रति व्यक्ति वर्तमान दर आने वाले दिनों में भी यथावत् बनी रही तो हमारी बढ़ती हुई आबादी अगले 25 वर्षो के दौरान विश्व के उपलब्ध उपयोग के लायक 90 प्रतिशत पानी का उपयोग करने लगेगी। ऐसी हालत में पृथ्वी के मीठे पानी पर जीने वाले अन्य समस्त जीवधारियों के लिए मात्रा 10 प्रतिशत ही जल बचेगा। यह स्थिति कितनी भयावह होगी इसका अंदाजा लगाया जा सकता है।

आज दुनियां में पैमाने पर देखा जाए तो पानी के कुल उपयोग में से 69 प्रतिशत खेती में, 23 प्रतिशत उद्योगों में और मात्र 8 प्रतिशत घरेलू कार्यो में खर्च हो रहा है। अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्रों के अनुसार जल की यह खपत अलग-अलग है, जो निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है :

तालिका 1: पानी की खपत

खपत क्षेत्र	अफ्रीकी देशों की खपत का प्रतिशत	यूरोपीय देशों की खपत का प्रतिशत
कृषि	88	33
उद्योग	5	54
घरेलू	7	13

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि विश्व के जो भाग जिस काम में आगे हैं वहां पानी की खपत भी उस काम पर अधिक है। लेकिन यदि हम सकल विश्व के जल उपयोग को लेंगे तो पानी की सर्वाधिक खपत खेत की सिंचाई में होती दिखेगी। इस कार्य के लिए सर्वाधिक उपयोग भूजल का ही किया जाता है। एक अनुमान के अनुसार प्रतिवर्ष जितने भूजल का संभरण हो सकता है उससे 160 अरब घनमीटर से अधिक पानी हम खेती में

* डी. 53/100 छोटी गैबी, लक्सा रोड, वाराणसी - 221010

सिंचाई के लिए जमीन के अंदर से खींच लेते हैं।

यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि फसलों को पानी की अत्यधिक आवश्यकता होती है। पानी के बिना खेती से पैदावार नहीं ली जा सकती। खेती में पानी की कितनी अधिक जरूरत होती है इसे निम्नलिखित तालिका से समझा जा सकता है :

तालिका 2 : खाद्य सामग्री की पैदावार में खर्च होने वाले जल की मात्रा

खाद्य सामाग्री प्रति किलोग्राम	जल खर्च (लीटर में)
आलू	500
गेहूं	900
अल्फा-अल्फा	900
जई	1110
मक्का	1400
चावल	1910
सोयाबीन	2000

1960 के बाद दुनियां के कृषि क्षेत्र में 12 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है। वर्तमान समय में संपूर्ण विश्व के 1.5 अरब हेक्टेयर क्षेत्र में कृषि कार्य होता हैं, जिसकी सिंचाई के लिए प्रतिवर्ष 2,000 से 2,555 घन किलोलिटर पानी का उपयोग किया जाता है। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार विश्व में 24 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है।

सिंचाई में जल का दुरुपयोग : अत्यंत चिंता का विषय है कि एक ओर सूखे और पानी के अभाव में अफ्रीका और एशिया के अनेक देशों में सूखा, अकाल (दुर्भिक्ष) और भुखमरी का आलम है, वहीं इन्हीं क्षेत्रों के कई देशों में बिना सोचे-समझे बेतहाशा पानी के उपयोग के चलते तीन करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र के खेतों की मिट्टी में लवणों की अधिकता से ऊसरीय प्रभाव उत्पन्न हो गया है। बिना सोचे-समझे अत्यधिक जल प्रयोग के चलते 8 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र में जलाक्रांति (वाटर लॉगिंग) की समस्या उत्पन्न हो गई है। इन क्षेत्रों का भूमिगत जल बहुत ऊपर आ गया है जिसके कारण ऐसे क्षेत्रों में कृषि कार्य संभव नहीं रह गया है।

कृषि के क्षेत्र में पानी की मांग लगातार बढ़ रही है। लेकिन परंपरागत सिंचाई के तरीकों, फसलों के विषय में सम्यक् जानकारी का अभाव, जलीय कुप्रबंधन एवं जलीय जागरूकता की कमी के कारण भारत सहित दुनियां के तमाम विकासशील देशों की कृषि में जल का भारी अपव्यय होता है जो हमारे सिंचित जल का लगभग 45 प्रतिशत तक है। कृषि कार्यों में जलीय चेतना बढ़ाकर, सिंचाई के साथ ही अन्य सभी क्षेत्रों में पानी की फिजूलखर्ची को रोककर, पानी की खपत को कम करके पानी के वर्तमान और आने वाले दिनों के वैश्विक संकट से बचा जा सकता हैं।

भारत में सिंचाई के लिए जल

प्रकृति ने इस क्षेत्र को जो अनमोल नियामतें दी हैं पानी भी उनमें से एक है। लेकिन हम भारतवासियों ने इसका उपयोग ठीक से नहीं किया, जिसके चलते देश में पानी की समस्या कठिन से कठिनतर होती जा रही है। भूमिगत और बाह्य जल के रूप में कुल मिलाकर भारतवर्ष को प्रतिवर्ष 1150 घनमीटर जल प्राप्त होता हैं। इसमें सतही जल की मात्रा 700 घन मीटर और भूगर्भीय जल की मात्रा 450 घन मीटर हैं। जल की यह मात्रा हमारी निरंतर बढ़ रही जरूरतों के लिए पर्याप्त नहीं हैं।

इस संदर्भ में हमारी स्थिति दुनिया के अन्य देशों से भिन्न है। यहां एक ओर विश्व का सर्वाधिक वर्षा वाला क्षेत्र चेरापूंजी (118.70 सेमी.) है जो दूसरी ओर 10 मिमी. से भी कम वर्षा वाला थार का मरुस्थल भी है। इसके बाबजूद यहां का अधिकांश क्षेत्र पर्याप्त वर्षा वाला है। यहां औसत वर्षा 110 सेमी. से अधिक होती है। तब भी इस देश में जलाभाव आम बात है। जबकि इजराइल-जैसा देश, जहां 25 सेमी. से भी कम वर्षा होती है, वहाँ पानी की कोई समस्या नहीं है। भारत में विश्व के सर्वाधिक संपन्न देश अमेरिका से 6 गुना अधिक वर्षा होती है। लेकिन वहां जल समस्या नहीं है। वास्तव में भारत की जल- समस्या का मूल कारण यहां का जलीय कुप्रबंधन है।

भारत मूलतः गांवों का देश है जहां की 72 प्रतिशत आबादी आज भी 5,55137 गांवों में बसती है। यहां 70 प्रतिशत के आस-पास लोग खेती में लगे हुए हैं। आज भी खेती यहां का मुख्य रोजगार है। खेती के लिए मिट्टी के बाद पानी दूसरा सबसे महत्वपूर्ण साधन है। खास करके टिकाऊ खेती के लिए पानी का कुशलतापूर्वक उपयोग नितांत जरूरी है। पिछले कुछ वर्षों से हमारे देश में पानी की मांग कृषि, घरेलू और औद्योगिक तीनों क्षेत्रों में बढ़ी है। यह मांग कृषि की तुलना में घरेलू और औद्योगिक क्षेत्रों में कहीं अधिक बढ़ रही प्रतीत होती है। भारत में 1985 में कृषीतर क्षेत्र में पानी की मांग 13 प्रतिशत थी जो 2025 में बढ़कर 27 प्रतिशत हो जाएगी। हमने अपने जलीय संसाधनों को नहीं बढ़ाया तो इस बढ़ी हुई मांग की पूर्ति के लिए हमें कृषि क्षेत्र से ही जल की कटौती करनी पड़ेगी।

वर्तमान समय में प्रत्येक भारतवासी के हिस्से वार्षिक जल की उपलब्धता 2100 घन मीटर के आसपास है जो आज के लिए पर्याप्त है। लेकिन 2030 तक आबादी की बढ़ोतरी और अन्य क्षेत्रों की मांग के चलते यह मात्रा 1700 घटकर घन मीटर पर आ जाएगी। ये हालात पानी की जरूरत के लिहाज से कमी वाले होंगे। विशेषज्ञों का मत है कि हालात का क्रम इसी तरह जारी रहा और हमने जल के लिए कोई ठोस उपाय नहीं किए तो इसके चंद वर्षों बाद ही देश में पानी का भीषण संकट उत्पन्न हो जाएगा।

हमारे देश में भी सतही और भूमिगत होनों ही जल स्रोतों का अंधाधुंध उपयोग किया जा रहा है। इसमें भी सतही जल की तुलना में भूमिगत जल के भारी और अनियोजित प्रयोग से इसका स्तर लगातार नीचे खिसकता जा रहा है। अनियोजित भूजल के प्रयोग के कारण पुनर्भरण से वंचित क्षेत्रों में कुएं सूख रहे हैं। आज हैंड पंपों और नलकूपों द्वारा जल की कमी के कारण पानी न देना आम बात है। देश में हरित क्रांति द्वारा अन्नोत्पादन वृद्धि के उद्देश्य से सिंचाई के लिए भारी संख्या में नलकूप और पंप सेट लगाए गए, जिनसे व्यापक जल-निकासी हुई, जिससे भूमिगत जल का स्तर तेजी से नीचे गिरा। बेतहाशा जल-निकासी से आज हालत यह है कि भूमिगत जल-निकासी के साथ ही जल के पुनर्भरण पर ध्यान न दिए जाने के कारण हरित क्रांति के अगुआ पंजाब के बारह और हरियाणा के तीन जिलों का भूमिगत जल खतरनाक स्तर तक नीचे चला गया है। उत्तर प्रदेश के आगरा जनपद के कुछ क्षेत्रों में भूमिगत जल के अंधाधुंध उपयोग के कारण जल इस स्तर तक नीचे चला गया है कि वहां पंपिंग सेटों से जल-निकासी संभव ही नहीं रह गई है जिससे वहां के किसानों ने भूमिगत जल निकासी के लिए अब सबमर्सिबल पंपों का प्रयोग करना शुरू कर दिया है। बुंदेलखंड और उसके आस-पास के कई जिलों के साथ ही पश्चिमी तथा मध्यवर्ती

उत्तर प्रदेश के अधिकांश जिलों के अलावा पूर्वांचल के कई जिलों का भूमिगत जलस्तर काफी नीचे चला गया है। तमिलनाडु, मध्यप्रदेश, गुजरात और राजस्थान के अनेक जनपदों की भी यही हालत है। हालात की गंभीरता का पता इस बात से चला है कि गुजरात के मेहसाना और तमिलनाडु के कोयंबटूर जिलों के भूमिगत जल-स्रोत स्थायी तौर पर सूख चुके हैं।

भूमिगत जल के स्तर में आती भारी गिरावट से जमीनी पानी की गुणवत्ता में भी भारी गिरावट आ रही है। जलीय अभाव के चलते भूमिगत जल की कमी वाले क्षेत्रों के जल में लवणीयता की वृद्धि आम बात हो गई है। ऐसा भूमि के नीचे मीठे पानी के अभाव में उस स्थान को भरने के लिए रिस कर पहुंचने वाले लवणीय जल के कारण हो रहा है। समुद्र के निकटवर्ती जिले के किसानों द्वारा सिंचाई के लिए भूमिगत जल के भारी दोहन से वहां मीठे भूगर्भीय जल के अभाव वाले क्षेत्र में रिस कर पहुंचने वाला समुद्र का खारा जल इन स्रोतों को लवणीय बना रहा है। दिल्ली, गाजियाबाद और फरीदाबाद में किसानों द्वारा अत्यधिक जल-दोहन से उपजे जलाभाव वाले भूगर्भीय जल भंडारों में औद्योगिक प्रदूषण से विषाक्तता की स्थिति तक पहुंच चुका यमुना और हिंडन नदियों का जल रिस कर पहुंच रहा है। अब इन क्षेत्रों में नलकूपों तथा पंपिंग सेटों से प्रदूषित जल ही निकल रहा है। भारत में भूगर्भीय जल-संभरण और असंतुलित निकास के कारण स्थिति लगातार भयावह होती जा रही है। दूसरी ओर भारत के सभी क्षेत्रों में पानी की बढ़ती ही जा रही मांग को निम्नलिखित तालिका से समझा जा सकता है :

तालिका-3: भारत में विभिन्न क्षेत्रों में जल की मांग की बढ़ोतरी का विवरण

उपयोग क्षेत्र	(बिलियन क्यूबिक लिटर)		
	वर्ष		
	2000	2025	2050
घरेलू उपयोग	42	73	102
सिंचाई	541	910	1072
उद्योग	8	22	63
ऊर्जा	2	15	130
अन्य	41	72	80
कुल	634	1092	1447

भारत में पानी की उत्तरोत्तर बढ़ती मांग और क्रमशः घटती उपलब्धता के बीच सर्वाधिक संकट कृषि-क्षेत्र में ही दिखाई पड़ रहा है।

बढ़ते जल संकट की इस घड़ी में समस्या पर व्यापक रूप से अध्ययन करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि अब समय आ गया है कि हम युद्ध स्तर पर जल-समस्या के निराकरण में लग जाएं अन्यथा देश में कृषि ही नहीं, पीने और घरेलू कार्य के साथ ही उद्योग के लिए भी जल सुलभ नहीं हो सकेगा जिससे हरित क्रांति का तो कहीं अता-पता नहीं रह जाएगा और देश में अकाल-जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाएगी तथा हमारी सभ्यता और संस्कृति का वही हस्र होगा जो पूर्व में विश्वविख्यात भारतीय सभ्यता हड़प्पा, पश्चिम एशिया की मेसापोटामिया, बेबीलोन, सीरिया, पर्सिया, मध्य अमेरिकी सभ्यता का हुआ था।

विज्ञान समाचार

मूंगा चट्टानों को खतरा

मछलियों और अन्य समुद्री जीवों के लिए स्वर्ग मानी जाने वाली मूंगा चट्टानों के खत्म होने की रफ्तार पहले की तुलना में कहीं ज्यादा हो गई है। यदि समय रहते कारगर कदम नहीं उठाए गए तो आने वाले दिनों में यह पूरी तरह खत्म हो सकती है। इन चट्टानों के खत्म होने से जलचरों की कई जातियों के अस्तित्व पर भी संकट उत्पन्न हो जाएगा। वैज्ञानिकों का मानना है कि यह सब जलवायु परिवर्तन के कारण हो रहा है। वैज्ञानिकों ने अपने निष्कर्ष में कहा है कि अगले बीस वर्षों में विश्व की आधी मूंगा चट्टानें समाप्त हो जाएगी जिससे समुद्री जैव-विविधता खतरे में पड़ जाएंगी।

लेखक-परिचय

1.डॉ. दीपक कोहली
5/104 विपुल खंड
गोमती नगर, लखनऊ-226010

2. डा. देवेंद्र शर्मा
निकट दुर्गामंदिर,
पो. बीरभद्र ऋषिकेश
उत्तरांचल - 249202

3. डॉ. देबेंद्र कुमार राय
प्रोफेसर, भौतिकी विभाग,
काशी हिंदू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

4. डॉ. श्रवण कुमार तिवारी
पूर्व सहायक निदेशक भौतिकी कक्ष,
काशी हिंदू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

5. सुश्री सावित्री देवी
सामाजिक कार्यकर्त्री,
लोकोत्थान समिति,
वाराणसी - 221005

6. श्री राधाकांत भारती
56, नगिन लेक अपार्टमेन्ट्स
पीरागढी, नई दिल्ली - 110087

7. सुश्री मधुज्योत्सना
ए-53/100 छोटी गैबी,
लक्सा रोड,
वाराणसी - 221010

8. डॉ. जे.एल. अग्रवाल
प्रौफेसर, शरीरक्रिया विज्ञान
मेडिकल कालेज, कागड़ा
हिमाचल प्रदेश - 17600

9. श्री विजन कुमार पांडेय
बड़ी बाग, लंका मैदान
(मजार के पास)
शहरी गोड़ा,
गाजीपुर - 233001

10. डॉ. एन.के. बोहरा
प्लाट नं. 389, गली नं. 10,
मिल्कमैन कॉलोनी
पालरोड, जोधपुर (राजस्थान)

11. श्री सीताराम गुप्ता
ए.डी. 106 सी,
पीतमपुरा, दिल्ली - 110088

12. श्री राजेश सिंह (शोधार्थी)
पर्यावरण विज्ञान विभाग
म.गा. चि.वि. चित्रकूट, सतना

13. डॉ. साधना चौरसिया
अध्यक्ष, पर्यावरण विज्ञान विभाग
म. गा. चित्रकूट विश्वविद्यालय,
चित्रकूट, सतना (म.प्र.)

14. ईशान देव
डी. 53/100 छोटी गैबी,
लक्सा रोड,
वाराणसी - 221010

आयोग के प्रकाशन

क-शब्दसंग्रह, शब्दावलियां परिभाषा कोश

भौतिकी	
भौतिकी शब्द-संग्रह	119.00
अंतरिक्ष विज्ञान शब्दावली	45.00
इलेक्ट्रॉनिकी परिभाषा कोश	22.00
तरल यांत्रिकी परिभाषा कोश	10.00
भौतिकी परिभाषा कोश	700.00
गृह विज्ञान	
गृह विज्ञान शब्द-संग्रह	600.00
कंप्यूटर विज्ञान एवं सूचना प्रौद्यागिकी	
कंप्यूटर विज्ञान शब्दावली	57.00
कंप्यूटर विज्ञान परिभाषा कोश	102.00
सूचना प्रौद्योगिकी शब्द-संग्रह	231.00
रसायन	
रसायन शब्द-संग्रह	592.00
इस्पात एंव अलौह धातुकर्म शब्दावली	55.00
उच्चतर रसायन परिभाषा कोश	17.00
धातुकर्म परिभाषा कोश	278.00
रसायन (कार्बनिक) परिभाषा कोश	25.00
वाणिज्य	
वाणिज्य शब्दावली	259.00
पूंजी बाजार एंव संबद्ध शब्दावली	79.00
वाणिज्य परिभाषा कोश	24.00
रक्षा	
समेकित रक्षा शब्दावली	284.00
गुणता नियंत्रण	
गुणता नियंत्रण शब्दावली	38.00
भाषा विज्ञान	
भाषा विज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी)	113.00
भाषा विज्ञान परिभाषा (कोश खंड 1)	89.00
भाषा विज्ञान परिभाषा (कोश खंड 2)	59.00
जीव विज्ञान	
कोशिका जैविकी शब्द-संग्रह	62.00
पर्यावरण विज्ञान शब्द-संग्रह	381.00
प्राणि विज्ञान परिभाषा कोश	216.00
सूक्ष्म जैविकी परिभाषा कोश	45.00
कोशिका जैविकी परिभाषा कोश	121.00
लोक प्रशासन	
लोक प्रशासन शब्दावली	52.00
गणित	
गणित शब्द-संग्रह	143.00
गणित परिभाषा कोश	203.00
सांख्यिकी परिभाषा कोश	18.00
भूगोल	
भूगोल शब्द-संग्रह	200.00
भूगोल परिभाषा कोश	10.00
मानव भूगोल परिभाषा कोश	18.00
मानचित्र विज्ञान परिभाषा कोश	231.00
अनुप्रयुक्त विज्ञान	
प्राकृतिक विपदा शब्दावली	17.00
जलवायु विज्ञान शब्दावली	131.00
मनोविज्ञान	
मनोविज्ञान परिभाषा कोश	9.50
मनोविज्ञान शब्दावली	247.00
इतिहास	
इतिहास परिभाषा कोश	20.50
प्रशासन	

प्रशासन शब्दावली	20.00
प्रशासन शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी) प्रकाशनाधीन	20.00
शिक्षा	
शिक्षा परिभाषा कोश खंड-1	13.50
शिक्षा परिभाषा कोश खंड-2	99.00
आयुर्विज्ञान	
आयुर्विज्ञान परिभाषा कोश (शल्य विज्ञान)	338.00
आयुर्विज्ञान के सामान्य शब्द एंव वाक्यांश (अंग्रेजी-तमिल-हिंदी)	279.00
समाज शास्त्र	
समाज कार्य परिभाषा कोश	16.25
समाज-शास्त्र परिभाषा कोश	71.40
नृविज्ञान	
सांस्कृतिक नृविज्ञान परिभाषा कोश	24.00
बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रहः	
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रहः विज्ञान, खंड 1	87.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रहः विज्ञान खंड 2	87.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी)	236.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मानविकी और सामाजिक विज्ञान खंड 1,2	292.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रहः मानविकी और सामाजिक विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी)	350.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : कृषि विज्ञान	278.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : आयुर्विज्ञान, भेषज विज्ञान, शारीरिक नृविज्ञान	239.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : आयुर्विज्ञान, कृषि एंव इंजीनियरी (हिंदी-अंग्रेजी)	48.50
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मुद्रण इंजीनियरी	48.50
बृहत पारिभाषिक शब्द-संग्रह : इंजीनियरी (सिविल, विद्युत्, यांत्रिकी)	340.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द संग्रह : पशु चिकित्सा विज्ञान	82.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : प्राणि विज्ञान	311.00
भू-विज्ञान	
भूविज्ञान शब्द-संग्रह	88.00
सामान्य भूविज्ञान शब्दावली	101.00
आर्थिक भूविज्ञान शब्दावली	75.00
भूभौतिकी शब्दावली	67.00
शैलयविज्ञान शब्दावली	82.00
खनिज विज्ञान शब्दावली	130.00
अनुप्रयुक्त भूविज्ञान शब्दावली	115.00
भूविज्ञान परिभाषा कोश	63.00
संरचनात्मक भूविज्ञान परिभाषा कोश	13.00
संरचनात्मक भूविज्ञान शब्दावली	73.00
शैल्यविज्ञान परिभाषा कोश	153.00
पेट्रोलियम प्रौद्योगिकी परिभाषा कोश	173.00
खनन एंव भूविज्ञान शब्द-संग्रह	32.00
संरचनात्मक भूविज्ञान एंव विवर्तनिकी शब्दसंग्रह	15.00
जीवाश्मविज्ञान शब्दावली	129.00
कृषि	
रेशम विज्ञान शब्द-संग्रह	50.00
कृषि कीटविज्ञान परिभाषा कोश	75.00
सूत्रकृमि विज्ञान परिभाषा कोश	125.00
मृदाविज्ञान परिभाषा कोश	77.00
इंजीनियरी	
रासायनिक इंजीनियरी शब्द-संग्रह	51.00
विद्युत् इंजीनियरी परिभाषा कोश	81.00

यांत्रिक इंजीनियरी परिभाषा कोश	94.00
सिविल इंजीनियरी परिभाषा कोश	10.00
वनस्पतिविज्ञान	
वनस्पतिविज्ञान शब्द-संग्रह	86.00
वनस्पतिविज्ञान परिभाषा कोश	75.00
पादप आनुवंशिकी परिभाषा कोश	75.00
पादपरोगविज्ञान परिभाषा कोश	75.00
पुरावनस्पति विज्ञान परिभाषा कोश	80.00
वानिकी शब्दसंग्रह	440.00
दर्शनशास्त्र	
भारतीय दर्शन परिभाषा (कोश खंड 1)	151.00
भारतीय दर्शन परिभाषा (कोश खंड 2)	124.00
भारतीय दर्शन परिभाषा (कोश खंड 3)	136.00
दर्शन शास्त्र परिभाषा कोश	198.00
पुस्तकालय विज्ञान	
पुस्तकालयविज्ञान परिभाषा कोश	49.00
पत्रकारिता	
पत्रकारिता परिभाषा कोश	87.50
पत्रकारिता एंव मुद्रण शब्दावली	12.25
पुरातत्व विज्ञान	
पुस्तकालय विज्ञान शब्दावली प्रकाशनाधीन	
पुरातत्वविज्ञान परिभाषा कोश	509.00
कला	
पाश्चात्य संगीत परिभाषा कोश	343.00
प्रबंधविज्ञान परिभाषा कोश	170.00
अर्थशास्त्र	
अर्थशास्त्र परिभाषा कोश	117.00
अर्थमिति परिभाषा कोश	17.65
अन्य	
अंतर्राष्ट्रीय विधि परिभाषा कोश	344.00
नाट्यशास्त्र, फिल्म एंव टेलीविजन परिभाषा कोश	200.00
नाट्यशास्त्र, फिल्म एंव टेलीविजन शब्दावली	75.00

ख संदर्भ ग्रंथ

ऐतिहासिक नगर	195.00
प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक नगर	109.00
समद्री यात्राएं	79.00
विश्व दर्शन	53.00
अपशिष्ट प्रबंधन	17.00
कोयला : एक परिचय	425.00
रत्न विज्ञान : एक परिचय	115.00
वाहितमल एवं आपंक : उपयोग एवं प्रबंधन	40.00
पर्यावरण प्रदूषण : नियंत्रण एवं प्रबंधन	23.00
भारत में गैस उत्पादन एवं प्रबंधन	540.00
भारत में ऊसर भूमि एवं फसलोत्पादन	559.00
2 दूरीक एंव 2 मानकित समष्टियों में संपात एंव स्थिर बिंदु समीकरणों के साधन	68.00
भारत में प्याज एंव लहसुन की खेती	82.00
पशुओं से मनुष्यों में होनेवाले रोग	60.00
ठोस पदार्थ यांत्रिकी	995.00
वैज्ञानिक शब्दावली: अनुवाद एंव मौलिक लेखन	34.00
मृदा-उर्वरता	410.00
ऊर्जा-संसाधन और संरक्षण	105.00
पशुओं के कवकीय रोग : उनका उपचार एंव नियंत्रण	93.00
पराज्यमितीय फलन	90.00
सामाजिक एंव प्रक्षेत्र वानिकी	54.00
विश्व के प्रमुख धर्म	118.00
पृथ्वी : उद्भव और विकास	470.00
पृथ्वी से पुरातत्व	40.00

विक्री संबंधी नियम

1 आयोग के प्रकाशन, आयोग के बिक्री पटल तथा भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के विभिन्न बिक्री पटलों पर उपलब्ध रहते हैं।

2. सभी प्रकाशनों की खरीद पर 25% की खरीद दी जाती है। कुछ पुराने प्रकाशनों पर 75 प्रतिशत तक भी छूट दी जाती है।

3. सभी तरह के आदेशों की प्राप्ति पर आयोग द्वारा इनवाइस जारी की जाती है। अपेक्षित धनराशि का बैंक ड्राफ्ट या मनीआर्डर अध्यक्ष, वैज्ञानिकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली (Chairman, C.S.T.T. New Delhi) के नाम देय होना चाहिए। चेक स्वीकार्य नहीं होगा। अपेक्षित धनराशि प्राप्त होने के पश्चात ही पुस्तकें भेजी जाती हैं।

4. चार किलोग्राम वजन तक की सभी पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल से भेजी जाती है। पुस्तकें भेजने पर पैंकिंग तथा फॉरवर्डिग चार्ज नहीं लिया जाता है।

5. चार किलोग्राम से अधिक की सभी पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती है तथा इन पर आने वाले सभी परिवहन-व्ययों का भुगतान मांगकर्ता द्वारा ही किया जाएगा।

6. पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजने के बाद आयोग द्वारा मूल बिल्टी तत्काल पंजीकृत डाक से मागकर्ता को भेज दी जाती है। यदि निर्धारित अवधि में पुस्तकों को ट्रांसपोर्ट कार्यालय से प्राप्त न किया गया तो उस स्थिति में लगने वाले सभी तरह के अतिरिक्त प्रभारों का भुगतान मांगकर्ता को ही करना होगा।

7. रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाने वाली पुस्तकों पर न्यूनतम वजन का प्रभार अवश्य लगता है जो प्रत्येक दूरी के लिए अलग-अलग होता है। यदि संबंधित संस्था चाहे तो आयोग में सीधे ही भुगतान करके पुस्तकें ले जा सकती है।

8. दिल्ली तथा उसके नजदीक के क्षेत्रों के आदेशों की पूर्ति डाक द्वारा संभव नही होगी। संबंधित संस्था को आयोग के बिक्री एकक में आवश्यक भुगतान करके पुस्तकें प्राप्त करनी होंगी।

9. पुस्तकों की पैंकिंग करते समय इस बात कध्यान रखा जाता है कि मांगकर्ता को सभी पुस्तकें अच्छी स्थिति में प्राप्त हों। पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल/रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती हैं। यदि परिवहन में पुस्तकों को किसी भी तरह का नुकसान पहुंचता है तो उसका दायित्व आयोग पर नहीं होगा।

10. सामान्यः बिल कटने के बाद आदेश में बदलाव या पुस्तकों की वापसी नही होगी। यदि क्रय राशि का समायोजन आवश्यक होगा तो राशि वापस नहीं की जाएगी। इस स्थिति में पुस्तकें ही दी जाएंगी।

MGIPRRND—2015HRD/09-1500 Copy

©भारत सरकार
प्रकाशन नियंत्रक
अक्टूबर—दिसम्बर—2008

पी०सी०एस० टी०टी—10—12/08
1500

©कापीराइट 2005

प्रकाशक :
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा विभाग),
भारत सरकार, पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली-110 066

नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित तथा
प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली-110064 द्वारा मुंद्रित

2009